...ग सं० २१.

सरल-

...त-गद्य-संग्रहः

...यों से कुछ ऐसे सरल, शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक ... जिनके अध्ययन से संस्कृत सीखने के इच्छुक ...सीखने में सहायता प्राप्त करने के साथ ही संस्कृतसाहित्य का रसास्वादन भी कर सकते हैं।

गद्य संग्रहः



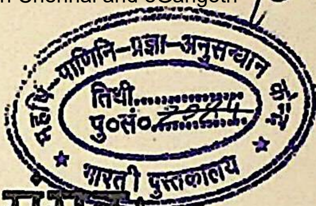


—यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत की सबसे विशाल सम्पत्ति क्या है और उत्तराधिकार के रूप में उसे सर्वोत्तम कौन सी वस्तु प्राप्त हुई है, तो मैं निस्सङ्कोच उत्तर दूँगा कि यह सम्पत्ति संस्कृत भाषा, साहित्य और उसके भीतर जमा सारी पूँजी ही है।

—पं० जवाहरलाल नेहरू



संस्कृत प्रचार पुस्तक माला सं० २१.



सरल-

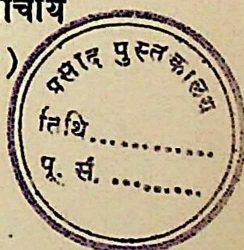
संस्कृत-गद्य-संग्रह.

संस्कृत के विभिन्न गद्य-ग्रन्थों से कुछ ऐसे सरल, शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक गद्यांशों का संकलन जिनके अध्ययन से संस्कृत सीखने के इच्छुक व्यक्ति संस्कृत सीखने में सहायता प्राप्त करने के साथ ही संस्कृतसाहित्य का रसास्वादन भी कर सकते हैं

सम्पादक—

श्री वासुदेव द्विवेदी, वेदशास्त्री साहित्याचार्य

(सम्पादक—संस्कृत प्रचार पुस्तक माला)



सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

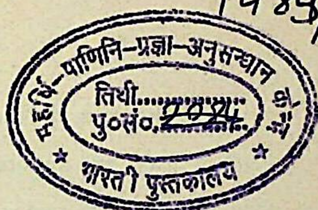
टेढ़ीनीम, काशी।

प्रथम आवृत्ति १००० ❀ मूल्य—एक रुपया.

मुद्रक

पं० बालकृष्ण शास्त्री,

ज्योतिष प्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस । ५७८



आवश्यक निवेदन

पुस्तक का परिचय

इस पुस्तक में संस्कृत के विभिन्न गद्य-ग्रन्थों से कुछ छोटे-छोटे गद्यांश संकलित किये गये हैं। इनकी संख्या सब मिला कर १०७ है। प्रायः सभी गद्यांश सन्धि एवं समास की जटिलता से रहित होने के कारण सरल, सुवाच्य एवं सुबोध हैं। इनमें से कुछ धार्मिक, कुछ आध्यात्मिक, कुछ शिक्षाप्रद, कुछ ज्ञानवर्धक, कुछ वर्णनात्मक, कुछ मनोरञ्जक, कुछ संभाषण सम्बन्धी, तथा कुछ हर्ष विषाद आदि विविध मनोभावों के द्योतक हैं। ये गद्यांश सुबन्त, विशेष्य विशेषण, तिङन्त, कृदन्त, कर्मवाच्य भाववाच्य तथा अव्यय इन छ प्रकरणों में विभक्त किये गये हैं। जिनमें सुबन्त पद अधिक हैं वे सुबन्त प्रकरण में रखे गये हैं। इनमें भी विभक्ति के अनुसार सात विभाग कर दिये गये हैं। जिन गद्यांशों में एक विभक्ति के रूप अधिक आये हैं वे एक साथ रखे गये हैं। इसी प्रकार जिन गद्यांशों में क्रियापद अधिक संख्या में मिलते हैं वे तिङन्त प्रकरण में रखे गये हैं। उनमें भी लकारों के अनुसार अनेक विभाग कर दिये गये हैं और जिन गद्यांशों में एक लकार के रूप अधिक आये हैं उन्हें एक साथ रखा गया है। इसी प्रकार अन्य प्रकरणों की भी व्यवस्था की गई है। कुछ गद्यांश परिशिष्ट में भी दिये गये हैं।

प्रत्येक गद्यांश के नीचे उसका भावानुवाद न देकर उसमें आये हुए समस्त पदों को अन्वयानुसार रखकर उनका अलग-अलग हिन्दी-अर्थ दिया गया है जिससे पढ़ने वालों को प्रत्येक पद का विभक्तियों, लकारों तथा कृत्प्रत्ययों के अनुसार ठीक-ठीक अर्थ मालूम हो सके। परन्तु कर्म-वाच्य आदि के गद्यांशों में पदों का अर्थ प्रायः कर्तृवाच्य के अनुसार ही किया गया है। उन स्थलों पर पाठकों को मूल संस्कृत के वाक्यों तथा उनके हिन्दी अर्थ को विशेष ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये जिससे शब्दार्थ समझने में कोई भ्रम न रहे।

पुस्तक का उद्देश्य : इससे लाभ

इन गद्यांशों के संकलन तथा इनके इस प्रकार के वर्गीकरण का उद्देश्य संस्कृत के प्रारम्भिक विद्यार्थियों तथा संस्कृत सीखने के इच्छुक प्रौढ़ व्यक्तियों को प्राचीन रचनाओं के आधार पर एक प्रकार के अनेक सुबन्त तिङन्त एवं कृदन्त आदि पदों का एक साथ विशद ज्ञान प्राप्त कराना तथा इस प्रकार उन्हें संस्कृत की समुचित योग्यता प्राप्त करने में सहायता पहुँचाना है। यह तो इसका मुख्य उद्देश्य है। पर इसके साथ इस पुस्तक के पाठकों को और भी अनेक लाभ होंगे। एक तो इस एक ही छोटी पुस्तक से संस्कृत के अनेक कवियों की रचनाओं के नमूने प्राप्त हो जाते हैं, दूसरे उनकी अद्भुत कवित्वशक्ति का परिचय मिलता है, तीसरे इन गद्यांशों से विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है, चौथे एक ही ढंग के पदों से युक्त लम्बे-लम्बे सरल, सुमधुर एवं धारावाही गद्यों के बाँचने से एक अनुपम आनन्द का अनुभव होता है, पाँचवें

व्यवहारोपयोगी शब्दों, धातुओं एवं अव्ययों का एक छोटा सा भण्डार मिल जाता है और छठवें इन गद्यांशों के पढ़ लेने पर इस प्रकार के अन्य गद्यों के भी पढ़ने की उत्कट उत्कण्ठा जागृत हो जाती है और पाठकों की संस्कृत पढ़ने की रुचि द्विगुणित हो जाती है।

पढ़ने की विधि

१—इस पुस्तक के पढ़ने से पहले विद्यार्थियों को कार्यालय द्वारा प्रकाशित "सुगम शब्द रूपावलि" तथा "सुगमधातु रूपावलि" इन दो पुस्तकों को पढ़कर शब्दरूप, धातुरूप, कृदन्त प्रत्यय और उनसे बने हुए शब्द तथा कर्मवाच्य एवं भाववाच्य आदि का समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। इन दोनों पुस्तकों के पढ़ने के साथ ही कार्यालय द्वारा प्रकाशित "बालसंस्कृतम्" तथा "बालकवितावलि" इन दो पुस्तकों को भी २–४ बार बाँच लेना चाहिये। इन चारों पुस्तकों का पढ़ना १५–२० दिनों में समाप्त हो जायगा। तत्पश्चात् इस पुस्तक को तथा इसके साथ प्रकाशित दूसरी पुस्तक "सरल संस्कृत पद्य संग्रह को" एक साथ पढ़ना चाहिये।

२—किसी गद्यांश को पढ़ते समय उसमें आये हुए सभी पदों का व्याकरणानुसार पदपरिचय जानना चाहिये। सुबन्त पद है तो उसका मूल शब्द क्या है? उसका लिङ्ग क्या है? वह किस कारक का रूप है? कौन विभक्ति है? कौन वचन है और किस पद के साथ उसका क्या सम्बन्ध है यह सब बातें ठीक-ठीक जाननी चाहिये। इसी प्रकार यदि क्रियापद है तो उसका मूल धातु क्या है? वह धातु किस गण

का है ? परस्मैपदी है या आत्मनेपदी ? सकर्मक है या अकर्मक ? सेट् है या अनिट् ? कौन काल है ? कौन लकार है ? कौन पुरुष है ? कौन वचन है ? तथा उसका कर्ता कौन है ? वह क्रियापद कर्तृवाच्य का है या कर्मवाच्य का अथवा भाव वाच्य का ? इन सब बातों का ठीक-ठीक ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी गद्यांश का एक भी पद ऐसा नहीं छूटना चाहिये जिसका पदपरिचय ठीक-ठीक न मालूम हो। यही व्यवस्था अन्य कृदन्त आदि प्रकरणों की भी जाननी चाहिये। इस पुस्तक में किसी पद का अर्थ के सिवाय और कोई पदपरिचय नहीं दिया गया है। अतः जिस पद के सम्बन्ध में विद्यार्थी को सन्देह हो उसे किसी संस्कृत के विद्वान से पूछ लेना चाहिये और कांपी पर उसे लिख भी लेना चाहिये।

३—तिङन्त और कृदन्त प्रकरण में किन किन धातुओं में कौन कौन उपसर्ग लगे हैं तथा उनके लगने से धातु के अर्थ में क्या परिवर्तन हो गया है इस पर भी ध्यान रखना चाहिये।

४—किसी गद्यांश को पढ़ते समय उसमें जितने भी सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त, विशेष्य, विशेषण तथा अव्यय आदि पद हों उन की गणना कर लेनी चाहिये।

५—किसी भी नवीन धातु और शब्द के मिलने पर उनके पूरे रूप अन्य विभक्तियों तथा लकारों में भी किस प्रकार चलेगें इस पर भी एक वार दृष्टि डालनी चाहिये तथा समझ में न आने पर किसी विद्वान् से पूछ लेना चाहिये।

६—सम्भव हो तो कुछ गद्यांशों को कण्ठस्थ भी कर लेना चाहिये

क्योंकि किसी भी भाषा के कुछ गद्य-पद्य भाग को कण्ठस्थ कर लेने से उस भाषा का ज्ञान अपेक्षाकृत अधिक शीघ्र तथा चिरस्थायी होता है। तथा—

७—इस पुस्तक में जो विशेष शब्द और धातु मिलें उनका स्वयं भी संस्कृत बोलते समय प्रयोग करने का अभ्यास करना चाहिये। संक्षेप में यही सब पढ़ने की विधि है।

पुस्तक की कुछ त्रुटियाँ

इस पुस्तक में कतिपय अनिवार्य कारणों से कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं। किसी भी गद्यांश के प्रत्येक पद का व्याकरणानुसार अलग अलग अर्थ देने से उस पूरे गद्यांश का हिन्दी-अर्थ सुसम्बद्ध नहीं हो पाया है और कहीं कहीं भाषा की सुन्दरता नष्ट हो गई है। गद्यांशों में जो विशेष शब्द और धातु आये हैं उन का पूरा पदपरिचय टिप्पणी में दे देने से पाठकों को अधिक लाभ होता पर पृष्ठ संख्या के बढ़ जाने के भय से ऐसा नहीं किया जा सका क्योंकि पृष्ठ संख्या बढ़ाने के लिये अपेक्षित अर्थ का अभाव था। जैसे गद्यांश इस पुस्तक में सङ्कलित हैं वैसे अन्य भी अनेक ग्रन्थों के उत्तमोत्तम गद्यांश मेरे पास सुरक्षित हैं और मैं उन्हें भी इसमें प्रकाशित करने के लिये लालायित था पर अर्थाभाव के ही कारण ऐसा नहीं किया जा सका। इन कारणों से हम जितने बड़े आकार और जिस रूप में यह संग्रह प्रकाशित करना चाहते थे वैसा नहीं कर सके। पर आशा है कि दूसरे संस्करण में हम इन त्रुटियों को दूर करने में समर्थ हो सकेंगे।

अस्तु जो कुछ भी "पत्रं पुष्पं" संगृहीत हो सका है वह संस्कृत सीखने के इच्छुक व्यक्तियों की सेवा में समर्पित है। यदि इस पुस्तक से कुछ पाठकों को संस्कृत सीखने में थोड़ा भी प्रोत्साहन तथा सहायता मिली तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

पाठकों से विनीत अभ्यर्थना

इस पुस्तक के प्रत्येक पाठक से हमारी विनीत अभ्यर्थना है कि वे इस पुस्तक के साथ प्रकाशित दूसरी पुस्तक "सरल संस्कृत पद्य संग्रह" को भी पढ़ने की कृपा करें। साथ ही यदि यह दोनों पुस्तकें संस्कृत सीखने में वस्तुतः सहायक प्रतीत हों तो इनका अपने हित-मित्रों, समीपवर्ती विद्यालयों तथा समस्त संस्कृत प्रेमी नर-नारी वृन्द में प्रचार करें तथा उनसे भी इन पुस्तकों को पढ़ने तथा इनके द्वारा संस्कृत सीखने के लिये अनुरोध करें। यदि पाठकों ने हमारी इस अभ्यर्थना पर थोड़ा भी ध्यान दिया तो मैं अपने को बहुत ही अनुगृहीत समझूँगा।

आशा है संस्कृत प्रचार के इच्छुक पाठकगण इस विनीत अभ्यर्थना पर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे। जो सज्जन इस प्रचारकार्य में सहयोग दें वे मुझे एक पत्र द्वारा अपना परिचय भी अवश्य भेजने की कृपा करें।

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
काशी।
पौष पूर्णिमा २०१२ वि०



विनीत
सम्पादक

ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार नामावली

(जिनके गद्यांश इस पुस्तक में संकलित किये गये हैं)

बृहदारण्यकोपनिषद्
छान्दोग्योपनिषद्
तैत्तिरीयोपनिषद्
ऐतरेयोपनिषद्
बृहज्जाबालोपनिषद्
नारायणोपनिषद्
प्रश्नोपनिषद्
विष्णुपुराणम् (वेदव्यास)
योगवाशिष्ठम् (महर्षि वाल्मीकि)
सत्याषाढ श्रौतसूत्रम् (सत्याषाढ)
ललित विस्तर (अज्ञात)
कौटलीयम् अर्थशास्त्रम् (चाणक्य)
कामसूत्रम् (वात्स्यायन)
चरक संहिता (अग्निवेश)
चाणक्यसूत्राणि (चाणक्य)
बालचरितम् (भास)
बालभारतम् (राजशेखर)
उपदेश साहस्री (श्रीमत् शङ्कराचार्य)
कादम्बरी (बाणभट्ट)
हर्षचरितम् (बाणभट्ट)
वासवदत्ता (सुबन्धु)
उदयसुन्दरी कथा (सोड्ढल)
तिलकमञ्जरी (धनपाल)
कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर)
गद्यचिन्तामणि (वादीभसिंह)
उपदेशतरंगिणी (जिनरत्नसूरि)
नलचम्पूः (त्रिविक्रमभट्ट)
नीलकण्ठविजयम् (नीलकण्ठदीक्षित)
दशकुमारचरितम् (दण्डी)
शिवराज विजय (अम्बिकादत्तव्यास)
मन्दारमञ्जरी (विश्वेश्वर)
गुणेश्वरचरित चम्पू (बदरीनाथ झा)
वासुदेव रसानन्द (शिवशर्म्मसूरि)
प्रतिष्ठामयूख
गद्यमुक्तावलि (सम्पादक)

प्रकरण तथा विषय-सूची



❀ वाग्देवतायै नमः ❀

सरल-
संस्कृत-गद्य-संग्रहः

१—सुबन्त प्रकरणम्

प्रथमा

सुख, शान्ति एवं समृद्धि के लिये प्रार्थनायें

(१) ॐ शान्तिरस्तु। ॐ पुष्टिरस्तु। ॐ तुष्टिरस्तु। ॐ वृद्धिरस्तु। ॐ अविघ्नमस्तु। ॐ आयुष्यमस्तु। ॐ आरोग्यमस्तु। ॐ शिवमस्तु। ॐ शिवं कर्मास्तु। ॐ कर्मसमृद्धिरस्तु। ॐ धर्मसमृद्धिरस्तु। ॐ वेदसमृद्धिरस्तु। ॐ शास्त्रसमृद्धिरस्तु। ॐ धनधान्यसमृद्धिरस्तु। ॐ पुत्रपौत्रसमृद्धिरस्तु। ॐ इष्टसम्पदस्तु। ॐ अरिष्टनिरसनमस्तु। ॐ यत् पापं रोगम् अशुभम् अकल्याणं तद् दूरे प्रतिहतमस्तु। यत् श्रेयः तदस्तु। ॐ उत्तरे कर्मणि निर्विघ्नमस्तु। ॐ उत्तरोत्तरम् अहरहः अभिवृद्धिरस्तु। ॐ उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः सम्पद्यन्ताम्।

—प्रतिष्ठामयूख

शान्तिः अस्तु सर्वत्र शान्ति हो। पुष्टिः अस्तु सबकी शारीरिक पुष्टि हो। तुष्टिः अस्तु सबकी मानसिक तुष्टि हो। अविघ्नम् अस्तु सब कर्मों में अविघ्न हो। आयुष्यम् अस्तु सबकी आयु में वृद्धि हो। आरोग्यम् अस्तु सब नीरोग रहें। शिवम् अस्तु सबका कल्याण हो। शिवं कर्म अस्तु सब काम कल्याणकारी हो। कर्मसमृद्धिः अस्तु सबके कार्यों में समृद्धि हो। धर्मसमृद्धिः अस्तु धार्मिक विचारों और कार्यों में समृद्धि हो। वेदसमृद्धिः अस्तु वेदों की समृद्धि हो। शास्त्रसमृद्धिः अस्तु शास्त्रों की समृद्धि हो। धान्य-समृद्धिः अस्तु धन और अन्न की समृद्धि हो। पुत्र-पौत्र-समृद्धिः अस्तु पुत्रों और पौत्रों की समृद्धि हो। इष्ट-सम्पद् अस्तु अभीष्ट सम्पत्ति प्राप्त हो। अरिष्टनिरसनम् अस्तु अरिष्ट का विनाश हो। यत् जो पापं पाप रोगं रोग अशुभं अशुभ (तथा) अकल्याणं अकल्याण (हो) तद् वह दूरे दूर प्रतिहतं अस्तु विनष्ट हो जाय। यत् जो श्रेयः परम कल्याण (है) तद् वह अस्तु होवे। उत्तरे आगे के कर्मणि काम में निर्विघ्नम् अस्तु निर्विघ्नता हो। उत्तरोत्तरम् उत्तरोत्तर अहरहः प्रतिदिन अभिवृद्धिः अस्तु अभिवृद्धि हो। उत्तरोत्तराः उत्तरोत्तर की जाने वाली क्रियाः क्रियायें शुभाः शुभ (और) शोभनाः सुन्दर सम्पद्यन्ताम् सम्पन्न होवें।

सब के कल्याणकारी होने के लिये प्रार्थना

(२) ॐ शुभानि वर्द्धन्ताम्। ॐ शिवा आपः सन्तु। ॐ शिवा ऋतवः सन्तु। ॐ शिवा ओषधयः सन्तु। ॐ शिवा वनस्पतयः सन्तु। ॐ शिवा अतिथयः सन्तु। ॐ शिवा अग्नयः सन्तु। ॐ शिवा आहुतयः सन्तु। ॐ अहोरात्रे शिवे स्याताम्॥

—प्रतिष्ठामयूख

शुभानि शुभ कार्य वर्द्धन्ताम् बढ़ें। आपः पानी शिवाः सन्तु कल्याणकारी होवे। ऋतवः ऋतुएँ शिवाः सन्तु कल्याणकारी होवें।

ओषधयः ओषधियाँ शिवाः सन्तु......। वनस्पतयः वनस्पतियाँ शिवाः सन्तु......। अतिथयः अतिथिगण शिवाः सन्तु .....। अग्नयः अग्नि शिवाः सन्तु......। आहुतयः आहुतियाँ शिवाः सन्तु........। अहोरात्रे दिन और रात शिवे कल्याणकारी स्याताम् होवें।

सब आश्रमों द्वारा पालन करने योग्य धर्म

अक्रोधः अहर्षः अरोषः अलोभः अमोहः अद्रोहः अदम्भः सत्यवचनम् अनत्याशः अपैशुनम् अनसूया संविभागः त्यागः आर्जवम् मार्दवम् शमः दमः सर्वभूतेष्वविरोधः योगः आर्यम् आनृशंस्यम् तुष्टिः इति सर्वाश्रमाणां समयपदानि। तानि अनुतिष्ठन् विधिना सार्वगामी भवति।

—सत्याषाढ श्रौतसूत्र २६.६,

अक्रोधः क्रोध का अभाव, अहर्षः हर्षोद्रेक का अभाव, अरोषः रोष का अभाव, अलोभः लोभ का अभाव, अमोहः सावधानता, अद्रोहः द्रोह का अभाव, अदम्भः दम्भ का अभाव, सत्यवचनम् सत्य बोलना, अनत्याशः नियमित एवं संयमित भोजन, अपैशुनम् पिशुनता न करना, अनसूया असूया न करना, संविभागः समुचित विभाग करना, त्यागः अपरिग्रह, आर्जवम् निष्कपट व्यवहार, मार्दवम् मृदुता, शमः काम-क्रोध आदि का परित्याग, दमः इन्द्रिय निग्रह, सर्वभूतेषुः समस्त प्राणियों में अविरोध विरोध का अभाव, योगः एकाग्रता, आर्यम् शिष्टाचार का पालन आनृशंस्यम् निष्ठुरता का अभाव, (तथा) तुष्टिः सन्तुष्टता इति यह सर्वाश्रमाणां समस्त आश्रमों के समयपदानि पालन करने योग्य विषय हैं। तानि उन्हें विधिना विधिपूर्वक अनुतिष्ठन् करता हुआ सार्वगामी आत्मानन्द को प्राप्त करने वाला भवति होता है।

प्रथमा एवं षष्ठी

एक श्रेणी की वस्तुओं में अधिक प्रभावकारी वस्तुओं की गणना

अन्नं वृत्तिकराणां श्रेष्ठम्, क्षीरं जीवनीयानाम्, लवणम् अन्न-द्रव्य-रुचिकराणाम्, व्यायामः स्थैर्यकराणाम्, ब्रह्मचर्यम् आयुष्याणाम्, परदारगमनम् अनायुष्याणाम्, विषादो रोगवर्धनानाम्, स्नानं श्रमहराणाम्, शोकः शोषणानाम्, लौल्यं क्लेशकराणाम्, नास्तिको वर्ज्यानाम्, कालभोजनम् आरोग्यकराणाम्, तृप्तिः आहारगुणानाम, गुरुभोजनं दुर्विपाककराणाम्, अनशनम् आयुषो ह्रासकराणाम्, ज्वरो रोगाणाम्, कुष्ठं दीर्घरोगाणाम्, राजयक्ष्मा सर्वरोगाणाम्, तद्विद्यसम्भाषा बुद्धिवर्धनानाम्, सद्वचनम् अनुष्ठेयानाम्, सर्वसंन्यासः सुखकराणाम् इति।※

—चरकसंहिता, सूत्रस्थान, २५, ३८.

वृत्तिकराणां शरीर की स्थिति ठीक रखने वाली वस्तुओं में अन्नं अन्न, जीवनीयानां जीवनी शक्ति देनेवाली वस्तुओं में क्षीरं दूध, अन्नद्रव्यरुचिकराणां खाद्य पदार्थों में रुचि बढ़ाने वाली वस्तुओं में लवणं नमक, स्थैर्य्यंकराणाम् शरीर में स्थैर्य (दृढ़ता) लाने वाले कामों में व्यायामः व्यायाम, आयुष्याणां आयुवर्द्धकों में ब्रह्मचर्यं ब्रह्मचर्य, अनायुष्याणां आयु घटाने वालों मे परदारगमनं परस्त्रीगमन, रोगवर्द्धनानां रोग बढ़ाने वालों में विषादः विषाद, श्रमहराणां थकावट दूर करने वालों में स्नानं स्नान, शोषणानां शरीर को सुखाने वालों में शोकः शोक, क्लेशकराणां क्लेश देने वालों में लौल्यं चपलता, वर्ज्योनां वर्जनीयो में

※ चरक संहिता में यह सूची बहुत लम्बी है। उसका यहाँ संक्षिप्त रूप दिया गया है।

नास्तिकः नास्तिक, आरोग्यकराणां नीरोग रखने वालों में कालभोजनम् उचित समय का भोजन, आहारगुणानां आहार के गुणों में तृप्तिः तृप्ति, दुर्विपाककराणां पाचन शक्ति बिगाड़ने वालों में गुरुभोजनं अधिक भोजन, आयुषः आयु का ह्रासकराणां ह्रास करने वालों में अनशनं अनशन, रोगाणां रोगों में ज्वरः ज्वर, दीर्घरोगाणां दीर्घ रोगों में कुष्ठं कुष्ठ, सर्वरोगाणां सब रोगों में राजयक्ष्मा राजयक्ष्मा, बुद्धिवर्द्धनानां बुद्धि बढ़ाने वालों में तद्विद्यसम्भाषा समान विषय को जानने वालों में उस विषय पर परस्पर चर्चा, अनुष्ठेयानां कर्तव्य कार्यों में सद्वचनं सज्जन पुरुषों के वचन का पालन (तथा) सुखकराणां सुख देने वालों में सर्वसन्यासः समस्त वस्तुओं का परित्याग श्रेष्ठं श्रेष्ठ है।

द्वितीया एवं तृतीया

किससे किस बात की परीक्षा करनी चाहिये

अग्निं जरणशक्त्या परीक्षेत, बलं व्यायामशक्त्या, श्रोत्रादीनि शब्दाद्यर्थग्रहणेन, मनः अर्थाऽव्यभिचरणेन, विज्ञानं व्यवसायेन, रजः सङ्गेन, मोहम् अविज्ञानेन, क्रोधम् अभिद्रोहेण, शोकं दैन्येन, हर्षम् आमोदेन, प्रीतिं तोषेण, भयं विषादेन, वीर्यम् उत्साहेन, अवस्थानम् अविभ्रमेण, श्रद्धाम् अभिप्रायेण, मेधां ग्रहणेन, संज्ञां नामग्रहणेन, स्मृतिं स्मरणेन, ह्रियम् अपत्रपणेन, शीलम् अनुशीलनेन, द्वेषं प्रतिषेधेन, उपधिम् अनुबन्धेन, धृतिम् अलौल्येन, वश्यतां विधेयतया, आयुषः क्षयम् अरिष्टैः, उपस्थित-श्रेयस्त्वम् कल्याणाभिनिवेशेन, अमलं सत्त्वम् अविकारेण।

—चरकसंहिता, विमानस्थानम् अ. ४.

जरणशक्त्या पाचन शक्ति से अग्निं जठराग्नि को, व्यायामशक्त्या व्यायाम शक्ति से बलं बल को, शब्दाद्यर्थग्रहणेन शब्द स्पर्श रूप रस

गन्ध आदि विषयों के ग्रहण से श्रोत्रादीनि श्रोत्र आदि इन्द्रियों को, अर्थोऽव्यभिचरणेन किसी विषय को ठीक-ठीक समझने में व्यभिचार (गल्ती) न होने से मनः मन को, व्यवसायेन व्यवसाय से विज्ञानं विज्ञान को, सङ्गेन आसक्ति से रजः रजोगुण को, अविज्ञानेन अज्ञान से मोहम् मोह को, अभिद्रोहेण द्रोह से क्रोधं क्रोध को, दैन्येन दीनता से शोकं शोक को, आमोदेन आमोद से हर्षम् हर्ष को, तोषेण सन्तोष से प्रीतिं प्रेम को, विषादेन विषाद से भयं भय को, उत्साहेन उत्साह से वीर्यं वीर्य को, अविभ्रमेण अभ्रान्ति से अवस्थानं सुस्थता को, अभिप्रायेण अभिप्राय से श्रद्धां श्रद्धा को, ग्रहणेन किसी विषय को ग्रहण कर लेने से मेधां मेधा को, नामग्रहणेन नाम लेने से संज्ञां नाम को; स्मरणेन स्मरण शक्ति से स्मृतिं स्मृति को, अपत्रपणेन लज्जित होने से ह्रियं लज्जा को, अनुशीलनेन अनुशीलन से शीलं शील को, प्रतिषेधेन विरोध से द्वेषं द्वेष को, अनुबन्धेन अनुबन्ध से उपधिं उपधि को, अलौल्येन अचञ्चलता से धृतिं धैर्य्य को, विधेयतया आज्ञाकारी होने से वश्यतां पराधीनता को, अरिष्टैः अशुभ लक्षणों से आयुषः आयु के क्षयं क्षय को, कल्याणाभिनिवेशेन शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होने से उपस्थितश्रेयस्त्वम् कल्याण की उपस्थिति को (तथा) अविकारेण विकार न होने से अमलं निर्मल सत्त्वं हृदय को-बुद्धि को परीक्षेत जाचे अर्थात् पाचनशक्ति आदि से अग्नि आदि की परीक्षा करे।

तृतीया एवं प्रथमा

अन्नदान का महत्त्व

याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिः, ताभिः पर्जन्यो वर्षति, पर्जन्येन ओषधिवनस्पतयः प्रजायन्ते, ओषधिवनस्पतिभिः अन्नं भवति, अन्नेन प्राणाः, प्राणैर् बलम्, बलेन तपः, तपसा श्रद्धा, श्रद्धया मेधा, मेधया मनीषा, मनीषया मनः, मनसा शान्तिः, शान्त्या

चित्तम्, चित्तेन स्मृतिः, स्मृत्या स्मारम्, स्मारेण विज्ञानम्, विज्ञानेन आत्मानं वेदयति। तस्मादन्नं ददत् सर्वाणि एतानि ददाति।

—नारायणोपनिषद्। (७९)

याभिः जिन रश्मिभिः किरणों से आदित्यः सूर्य तपति तपते हैं ताभिः उन रश्मियों से पर्जन्यः मेघ वर्षति बरसता है, पर्जन्येन मेघ से ओषधि-वनस्पतयः ओषधियाँ और वनस्पतियाँ प्रजायन्ते उत्पन्न होती हैं, ओषधि-वनस्पतिभिः ओषधियों और वनस्पतियों से अन्नं अन्न भवति होता है, अन्नेन अन्न से प्राणाः प्राण होते हैं, प्राणैः प्राणों से बलम् बल होता है, बलेन बल से तपः तप होता है, तपसा तप से श्रद्धा श्रद्धा होती है, श्रद्धया श्रद्धा से मेधा मेधा होती है, मेधया मेधा से मनीषा मनीषा होती है, मनीषया मनीषा से मनः मन होता है, मनसा मन से शान्तिः शान्ति होती है, शान्त्या शान्ति से चित्तम् चित्त होता है, चित्तेन चित्त से स्मृतिः स्मृति होती है, स्मृत्या स्मृति से स्मारम् स्मार होता है, स्मारेण स्मार से विज्ञानम् विज्ञान होता है, विज्ञानेन विज्ञान से आत्मानम् आत्मा को वेदयति जानता है। तस्मात् इस लिये अन्नम् अन्न को ददत् देता हुआ (मनुष्य) एतानि इन सर्वाणि समस्त वस्तुओं को ददाति देता है।

तृतीया एवं प्रथमा

एक राज्य के निवासियों के गुणों का वर्णन

यत्र च—ज्ञानेन सह कार्यकौशलम्, सम्पदा सह महोदारता, प्रभावेण सह विनयः, शक्त्या सह परोपकृतिः, शैशवेन सह विद्या-व्यसनम्, यौवनेन सह सदाचार-रक्षणम्, वार्धक्येन सह धर्मोऽनु-सन्धानम्, विक्रमेण सह विवेकः, दानेन सह सत्करणम्, भोगेन सह अनासङ्गः, स्तोत्रेण सह वैतृष्ण्यम्, नीतिनैपुण्येन सह आर्ज-

वम्, सुकृतेन सह अविकत्थनम्, स्वाकारेण सह गुणः, विलासेन सह सुकृतानुरोधः, संस्तवातिशयेन सह आदरभरः, चातुर्येण सह अचापलम्, गाम्भीर्येण सह अदीर्घसूत्रत्वम्, प्रतापेण सह अनुक्रोशः, गुणोत्कर्षेण सह गर्वोपरमः, सौन्दर्येण सह शीलम्, उन्नत्या सह अनुद्धतिः, व्यासंगेन सह शास्त्राभ्यासः, प्रभुत्वेन सह परलोकभयम्, उन्निनंसया सह औचिती-समालोचना, ब्रह्मचर्येण सह गार्हस्थ्यम्, शासनेन सह पालनम्, लालनेन सह शिक्षणम्।

—गुणेश्वर चरितचम्पू १.

यत्र च और जहाँ पर ज्ञानेन सह ज्ञान के साथ कार्यकौशलम् कार्यकुशलता थी, सम्पदा सह सम्पत्ति के साथ महोदारता महती उदारता थी, प्रभावेणः सह प्रभाव के साथ विनयः विनय था, शक्त्या सह शक्ति के साथ परोपकृतिः परोपकार था, शैशवेन सह शैशव के साथ विद्याव्यसनम् विद्या का व्यसन था, यौवनेन सह यौवन के साथ सदाचाररक्षणम् सदाचार की रक्षा थी, वार्द्धक्येन सह वृद्धावस्था के साथ धर्माऽनुसन्धानम् धर्म की जिज्ञासा थी, विक्रमेण सह पराक्रम के साथ विवेकः विवेक था, दानेन सह दान के साथ सत्करणम् सत्कार था, भोगेन सह भोग के साथ अनासङ्गः अनासक्ति थी, स्तोत्रेण सह स्तुति एवं प्रशंसा के साथ वैतृष्ण्यम् लोभ-लालच का अभाव था, नीतिनैपुण्येन सह नीति निपुणता के साथ आर्जवम् सरलता थी, सुकृतेन सह पुण्यकार्य करने के साथ अविकत्थनम् आत्मप्रशंसा नहीं थी, स्वाकारेण सह सुन्दर आकार के साथ गुणः गुण था, विलासेन सह भोगविलास के साथ सुकृतानुरोधः सत्कर्म करने में स्नेह था, संस्तवातिशयेन सह अधिक परिचय के साथ आदरभरः अधिक आदर था, चातुर्येण सह चतुरता के साथ अचाञ्चल्यम् चंचलता का अभाव था, गाम्भीर्येण सह गम्भीरता के साथ अदीर्घसूत्रत्वम् दीर्घसूत्रता नहीं थी,

प्रतापेण सह प्रताप के साथ अनुक्रोशः दया थी, गुणोत्कर्षेण सह गुणों में वृद्धि के साथ गर्वोपरमः अभिमान का अभाव था, सौन्दर्येण सह सुन्दरता के साथ शीलम् शील था, उन्नत्या सह उन्नति के साथ अनुद्धतिः औद्धत्य का अभाव (विनम्रता) था, व्यासंगेन सह विविध कार्यों में लगे रहने के साथ शास्त्राऽभ्यासः शास्त्रों का अध्ययन था, प्रभुत्वेन सह प्रभुता के साथ परलोकभयम् परलोक का भय था, उन्निनंसया सह उन्नत होने की इच्छा के साथ औचिती-समालोचना औचित्य का विचार था, ब्रह्मचर्येण सह ब्रह्मचर्य के साथ गार्हस्थ्यम् गृहस्थाश्रम था, शासनेन सह शासन के साथ पालनम् पालन था लालनेन सह लालन के साथ शिक्षणम् शिक्षा थी।

चतुर्थी

देवी देवताओं को नमस्कार

ॐ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः। ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नमः। ॐ मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः। ॐ कुलदेवताभ्यो नमः। ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः। ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः। ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः। ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः। ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः।

—प्रतिष्ठामयूख

श्रीमान् महा गणाधिपति को नमस्कार। श्री लक्ष्मी और नारायण को नमस्कार। श्री उमा[1] और महेश्वर[2] को नमस्कार। श्री वाणी[3] और हिरण्यगर्भ[4] को नमस्कार। श्री शची[5] और पुरन्दर[6] को नमस्कार। श्री माता

१—पार्वती, २—शिव, ३—सरस्वती, ४—ब्रह्मा, ५—इन्द्राणी, ६—इन्द्र।

पिता के चरण-कमलों को नमस्कार। श्री कुल देवताओं को नमस्कार। श्री इष्ट देवताओं को नमस्कार। श्री ग्राम देवताओं को नमस्कार। श्री स्थान देवताओं को नमस्कार। श्री वास्तु देवताओं को नमस्कार। सब देवताओं को नमस्कार। सब ब्राह्मणों को नमस्कार।

चतुर्थी एवं द्वितीया

गृहमाताओं को नमस्कार और उनका आवाहन

ॐ कीर्त्यै नमः कीर्तिमावाहयामि। ॐ लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीमावाहयामि। ॐ धृत्यै नमः धृतिमावाहयामि। ॐ मेधायै नमः मेधामावाहयामि। ॐ पुष्ट्यै नमः पुष्टिमावाहयामि। ॐ श्रद्धायै नमः श्रद्धामावाहयामि। ॐ क्रियायै नमः क्रियामावाहयामि। ॐ मत्यै नमः मतिमावाहयामि। ॐ बुद्ध्यै नमः बुद्धिमावाहयामि। ॐ लज्जायै नमः लज्जामावाहयामि। ॐ वपुषे नमः वपुषमावाहयामि। ॐ शान्त्यै नमः शान्तिमावाहयामि। ॐ तुष्ट्यै नमः तुष्टिमावाहयामि। ॐ कान्त्यै नमः कान्तिमावाहयामि।

—प्रतिष्ठामयूख

कीर्त्यै कीर्ति को नमः नमस्कार, कीर्तिम् कीर्ति को आवाहयामि आवाहित करता हूँ। लक्ष्म्यै लक्ष्मी को नमः नमस्कार, लक्ष्मीं लक्ष्मी को आवाहयामि आवाहित करता हूँ। धृत्यै नमः धृति को नमस्कार धृतिम् आवाहयामि धृति को आवाहित करता हूँ। मेधायै नमः मेधा को नमस्कार, मेधाम् आवाहयामि मेधा को आवाहित करता हूँ। इसी प्रकार अन्य वाक्यों का भी अर्थ समझें। यथा—पुष्टि को नमस्कार, पुष्टि को आवाहित करता हूँ। श्रद्धा को नमस्कार, श्रद्धा को आवाहित करता हूँ। क्रिया को नमस्कार, क्रिया को आवाहित करता हूँ। मति को नमस्कार, मति को आवाहित करता हूँ। बुद्धि को नमस्कार, बुद्धि को

आवाहित करता हूँ। लज्जा को नमस्कार, लज्जा को आवाहित करता हूँ। वपुषे नमः शरीर को नमस्कार वपुषम् शरीर को आवाहित करता हूँ। शान्ति को नमस्कार, शान्ति को नमस्कार करता हूँ। तुष्टि को नमस्कार, तुष्टि को आवाहित करता हूँ। कान्ति को नमस्कार, कान्ति को आवाहित करता हूँ।

पञ्चमी एवं प्रथमा

सृष्टिक्रम का वर्णन

तस्माद् वा एतस्माद् आत्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोः अग्निः। अग्नेः आपः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्यः अन्नम्। अन्नात् पुरुषः। स वा एष पुरुषः अन्नरसमयः।

—तैत्तिरीय उपनिषद् बल्ली २, अनु० १

वै निश्चय ही तस्मात् उस (प्रसिद्ध) एतस्मात् इस आत्मनः परमात्मा से आकाशः आकाश सम्भूतः उत्पन्न हुआ; आकाशात् आकाश से वायुः वायु; वायोः वायुसे अग्निः अग्नि; अग्नेः अग्नि से आपः जल; अद्भ्यः जल से पृथिवी पृथिवी; पृथिव्याः पृथिवी से ओषधयः ओषधियाँ; ओषधिभ्यः ओषधियों से अन्नम् अन्न; (और) अन्नात् अन्न से पुरुषः (यह) मनुष्य शरीर (उत्पन्न हुआ)। स वह एष यह पुरुषः मनुष्य शरीर वै निश्चय ही अन्न-रस-मयः अन्न और रसमय है।

षष्ठी एवं प्रथमा

सुखप्राप्ति के उपाय

सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलम् अर्थः। अर्थस्य मूलं राज्यम्। राज्यमूलम् इन्द्रिय-जयः। इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः। विनयस्य मूलं

वृद्धोपसेवा। वृद्धसेवाया विज्ञानम्। विज्ञानेन आत्मानं सम्पादयेत्।

—चाणक्य सूत्राणि १–४

सुखस्य सुख का मूलं मूल धर्मः धर्म है। धर्मस्य धर्म का मूलं मूल राज्यम् राज्य है। राज्यमूलम् राज्य का मूल इन्द्रियजयः इन्द्रियों का विजय है। इद्रियजयस्य इन्द्रियां पर विजय का मूलं मूल विनयः विनय है। विनयस्य विनय का मूलं मूल वृद्धोपसेवा वृद्ध जनों की सेवा है। वृद्धसेवायाः वृद्धों की सेवा का मूल विज्ञानम् विज्ञान है–बुद्धि है। विज्ञानेन विज्ञान से–बुद्धि से आत्मानं अपने को सम्पादयेत् सम्पन्न करना चाहिये।

षष्ठी एवं प्रथमा

महाराज नल के सैनिकों के सत्कार के लिये एकत्र की हुई सामग्री का वर्णन—

लग्नाः सर्वतो दृश्यन्ते पर्वताः पक्वान्नस्य, राशयः शाल्योदनस्य, स्तूपाः सूपस्य, निर्झराः सर्पिषः, सिन्धवो मधुनः, निकराः शर्करायाः, स्रोतांसि दधिदुग्धयोः, शैलाः शाकानाम्, निपानानि पानकानाम्, कुल्याः फलरसानाम्, कूटाः कषायाऽम्ल-लवण-तिक्त-मधुरोपदंशानाम्।

—नलचम्पू

पक्वान्नस्य पकवान के पर्वताः पर्वत, शाल्योदनस्य अगहनी धान के भात के राशयः समूह, सूपस्य दाल के स्तूपाः स्तूप, सर्पिषः घी के निर्झराः झरने, मधुनः मधु की सिन्धवः नदियाँ, शर्करायाः शक्कर के निकराः समूह, दधि-दुग्धयोः दही और दूध के स्रोतांसि सोते, शाकानाम् शागों के शैलाः पर्वत, पानकानाम् शर्वत आदि पेय पदार्थों

के निपानानि प्याऊ, फल-रसानाम् फलों के रसों के कुल्याः नहर, (तथा) कषायाम्ल-लवण-तिक्त-मधुरोपदंशानाम् कसैले, खट्टे, नमकीन, तीते और मीठे अचार एवं चटनी के कूटाः समूह सर्वतः चारों ओर लग्नाः लगे हुए दृश्यन्ते दीखते हैं।

षष्ठी एवं प्रथमा

महर्षि जाबालि का वर्णन

एष प्रवाहः करुणरसस्य, सन्तरण-सेतुः संसार-सिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुः तृष्णालता-गहनस्य, सागरः सन्तोषामृतस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य, अस्तगिरिः असद्ग्रहस्य, मूलम् उपशमतरोः, नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, प्रासादो धर्मध्वजस्य, तीर्थः सर्वविद्यावताराणाम्, वड़वानलो लोभार्णवस्य, निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागपल्लवस्य, महामन्त्रः क्रोधभुजंगमस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलबन्धो नरकद्वाराणाम्, कुलभवनम् आचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम्, अभूमिः मदविकाराणाम्, दर्शकः सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिः उत्साहचक्रस्य, आश्रयः सत्वस्य, क्षेत्रम् आर्जवस्य, प्रभवः पुण्यसञ्चयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अरातिः विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः, अननुकूलः अभिमानस्य, असम्मतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य, अनवकाशो विषयाणाम्, अनभिमुखः सुखानाम्।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

एष यह (महर्षि जाबालि) करुणारसस्य करुण रस के प्रवाहः प्रवाह, संसारसिन्धोः संसार सागर के सन्तरणसेतुः पार लगाने के लिये सेतु, क्षमाम्भसाम् क्षमारूपी जल के आधारः आधार, तृष्णा-लतागहनस्य तृष्णारूपी झाड़ी के परशुः कुठार, सन्तोषामृतस्य सन्तोषरूपी अमृत के सागरः सागर, सिद्धिमार्गस्य सिद्धिमार्ग के उपदेष्टा उपदेशक, अस-

द्रुहस्य अनुचित आग्रह के अस्तगिरिः अस्ताचल, उपशमतरोः शांति-रूपी वृक्ष के मूलम् मूल, प्रज्ञाचक्रस्य प्रज्ञारूपी चक्र के नाभिः मुख्य आधार स्वरूप, धर्मध्वजस्य धर्मरूपी ध्वज के (फहराने का प्रासादः महल, सर्वविद्यावतारणाम् सब विद्याओं के उतरने का तीर्थः तीर्थ (घाट), लोभार्णवस्य लोभरूपी समुद्र के वड़वानलः वड़वानल, शास्त्ररत्नानाम् शास्त्र रूपी रत्नों के (परख के लिये) निकषोपलः कसौटी, रागपल्लवस्य राग (सांसारिक स्नेह) रूपी पल्लवों के दावानलः दावानल, क्रोध-भुजंगमस्य क्रोधरूपी सर्प के महामन्त्रः महामन्त्र, मोहान्धकारस्य मोहरूपी अन्धकार के दिवसकरः सूर्य, नरकद्वाराणाम् नरक के दरवाजों के अर्गल-वन्धः अर्गला, आचाराणाम् सब आचारों के कुलभवनम् कुलगृह, मङ्गलानां सब मङ्गलों के आयतनम् निवास स्थान, मदविकाराणाम् मद से उत्पन्न होनेवाले विकारों के अभूमिः अस्थान, सत्पथानाम् सन्मार्गों के दर्शकः दर्शक, साधुतायाः साधुता के उत्पत्तिः उत्पत्ति स्थान, उत्साह-चक्रस्य उत्साह-चक्र के नेमिः नेमि, सत्वस्य सतोगुण के आश्रयः आश्रय, आर्जवस्य सरलता के क्षेत्रम् क्षेत्र, पुण्य-सञ्चयस्य पुण्य-सञ्चय के प्रभवः उत्पत्तिस्थान, मत्सरस्य मत्सर के लिये अदत्तावकाशः जिन्होंने अवकाश नहीं दिया है, विपत्तेः विपत्ति के अरातिः शत्रु, परिभूतेः परि-भव के अस्थानं अस्थान, अभिमानस्य अभिमान के अननुकूलः प्रति-कूल, दैन्यस्य दीनता के असम्मतः अप्रिय, रोषस्य रोष के अनायत्तः अधीन न रहने वाले, विषयाणाम् विषयों के अनवकाशः अस्थान (तथा) सुखानाम् सुखों के अनभिमुखः विमुख हैं।

षष्ठी तृतीया एवं प्रथमा

तारापीड द्वारा शुकनाश को सान्त्वना प्रदान

एतत् खलु प्रदीपेन अग्नेः प्रकाशनम्, वासरालोकेन भास्वतः समुद्भासनम्, अवश्यायलेशैः आह्लादनं अमृतांशोः, मेघाम्बु-

विन्दुभिः आपूरणं पयोधेः, व्यजनानिलैः अभिवर्द्धनं प्रभञ्जनस्य, यद् अस्मद्विधैः परिबोधनम् आर्य्यस्य। तथापि—प्राज्ञस्य अपि, वहुश्रुतस्य अपि, विवेकिनः अपि, धीरस्य अपि, सत्त्ववतः अपि, अवश्यं दुःखातिपातेन—विशुद्धमपि वर्षासलिलेन सर इव—मानसं कलुषीक्रियते सर्वस्य। कलुषीकृते मानसे किमिदम् इति सर्वमेव दर्शनं नश्यति, न चित्तम् आलोचयति, न बुद्धिः बुध्यते, न विवेकः अपि विविनक्ति येन ब्रवीमि।

—कादम्बरी, उत्तरार्द्ध,

अस्मद्विधैः हमारे जैसे लोगों के द्वारा आर्य्यस्य आर्य्य का यत् जो परिबोधनम् समझाना है एतत् खलु यह तो प्रदीपेन दीपक से अग्नेः अग्नि का प्रकाशनम् प्रकाशन करना है, वासरालोकेन दिन के प्रकाश से भास्वतः सूर्य का समुद्भासनम् समुद्भासन करना है, अवश्यायलेशैः ओस के लेश मात्र से अमृतांशोः चन्द्रमा का आह्लादनम् आह्लादन करना है, मेघाम्बु-विन्दुभिः मेघों के जलविन्दुओं से पयोधेः समुद्र को आपूरणं भरना है (तथा) व्यजनानिलैः पंखों की हवा से प्रभञ्जनस्य आँधी का अभिवर्द्धनम् अभिवर्द्धन है। तथापि तो भी सर्वस्य प्रत्येक प्राज्ञस्य अपि विद्वान् का भी वहुश्रुतस्य अपि बहुज्ञ का भी विवेकिनः अपि विवेकी का भी धीरस्य अपि धीर का भी सत्ववतः अपि वलवान् का भी मानसं चित्त विशुद्धम् अपि विशुद्ध होने पर भी दुखातिपातेन दुःखों के अत्यन्त आघात से वर्षासलिलेन वर्षा के पानी से सरः इव सरोवर के समान—अवश्यम् अवश्य ही कलुषीक्रियते कलुषित हो जाता है। मानसे मन के कलुषीकृते कलुषित हो जाने पर किम् इदम् यह क्या है इति इस प्रकार का सर्वम् एव सारा ही दर्शनं ज्ञान नश्यति नष्ट हो जाता है न चित्तम् न चित्त आलोचयति [उचित अनुचित] विचारता है न बुद्धिः न बुद्धि बुध्यते समझती है न विवेकः अपि न विवेक भी विविनक्ति विवेक करता है

येन जिसके कारण ब्रवीमि मैं (अल्पज्ञ होने पर भी आप जैसे महाविद्वान् को) समझा रहा हूँ ।

षष्ठी, चतुर्थी एवं प्रथमा

आत्मा का महत्त्व

(महर्षि याज्ञवल्क्य का मैत्रेयी के प्रति आत्मा के महत्त्व का प्रतिपादन)

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति, न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति, न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति, न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति, न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति, न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति, न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति, न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति, न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति आत्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति, न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् २–४

अरे अरे मैत्रेयी ! पत्युः पति के कामाय हित के लिये पतिः पति प्रियः प्रिय न भवति नहीं होता है तु किन्तु आत्मनः अपने कामाय हित के लिये पतिः पति प्रियः प्रिय भवति होता है, जायायै स्त्री के

लिये······पुत्राणां पुत्रों के······वित्तस्य धन के······ब्राह्मणः ब्राह्मण के······क्षत्रस्य क्षत्रिय के······लोकानां लोगों के······देवानां देवों के भूतानां प्राणियों के......सर्वस्य सबके...शेष पूर्ववत्।

सप्तमी

राज्य किसके पास नहीं टिकता ?

राज्यं हि नाम······न अमहासत्वे, न अस्थिरप्रकृतौ, न अदातरि, न अस्थूललक्ष्ये, न अशुचौ, न अविक्रान्ते, न अमहोत्साहे, न अप्रियवादिनि, न असत्यसन्धे, न अप्राज्ञे, न अविवेकिनि, न अकृतज्ञे, न पुरुषान्तरज्ञे, न अनुदार-व्यवहर्तौ, न असंविभागशीले, न अन्याय-वर्तिनि, न अधमरुचौ, न अशास्त्र-व्यवहारिणि, न अशरण्ये, न अब्रह्मण्ये, न अकृपालौ, न अमित्रवत्सले, न अवश्यात्मनि, न अनियतेन्द्रिये, न असेवके वा पदम् आदधाति।

—कादम्बरी, उत्तरार्द्ध

राज्यं राज्य न अमहासत्वे न महासत्व-रहित पुरुष के पास न अस्थिरप्रकृतौ न अस्थिरस्वभाव वाले के पास, न अदातरि न अदाता के पास न अस्थूललक्ष्ये न क्षुद्र लक्ष्य वाले के पास, न अशुचौ न अपवित्र के पास, न अविक्रान्ते न पराक्रमहीन के पास, न अमहोत्साहे न महान् उत्साह से रहित के पास, न अप्रियवादिनि न अप्रियवादी के पास, न असत्यसन्धे न झूठ प्रतिज्ञा करने वाले के पास, न अप्राज्ञे न मूर्ख के पास, न अविवेकिनि न विवेकहीन के पास, न अकृतज्ञे न कृतज्ञताहीन के पास, न अपुरुषान्तरज्ञे न मनुष्यों के भेद को न पहचानने वाले के पास न अनुदार-व्यवहर्तौ न अनुदार व्यवहार वाले के पास, न असंविभागशीले न समुचित विभाग न करने वाले के पास, न अन्यायवर्तिनि न अन्याय करने वाले के पास, न अधर्मरुचौ न अधर्म करने वाले के पास,

न अशास्त्रव्यवहारिणि न शास्त्रविरुद्ध व्यवहार करने वाले के पास, न अशरण्ये न शरणागतों का परित्याग करने वाले के पास, न अब्रह्मण्ये न ब्राह्मण में भक्ति न रखने वाले के पास, न अकृपालौ न कृपारहित के पास, न अमित्रवत्सले न मित्रों के साथ स्नेह न रखने वाले के पास, न अवश्यात्मनि न अपने वश में न रहने वाले के पास, न अनियतेन्द्रिये न अजितेन्द्रिय के पास और न असेवके न सेवा न करने वाले के पास पदम् पैर आदधाति रखता है।

चन्द्रापीड द्वारा समस्त कलाओं का अभ्यास और उनमें नैपुण्यप्राप्ति

चन्द्रापीडोऽपि···अचिरेण एव कालेन···आचार्य्यैः उपदिश्यमानः सर्वा विद्या जग्राह। मणिदर्पण इव अतिनिर्मले तस्मिन् सञ्चक्राम सकलः कलाकलापः। तथाहि—पदे, वाक्ये, प्रमाणे, धर्मशास्त्रे, राजनीतिषु, व्यायामविद्यासु···सर्वेषु आयुधविशेषेषु, रथचर्य्यासु, गजपृष्ठेषु, तुरङ्गमेषु, वीणा-वेणु-मुरज-कांस्य-ताल-दर्दुर-पुट-प्रभृतिषु वाद्येषु, भरतादि-प्रणीतेषु नृत्यशास्त्रेषु, नारदीयप्रभृतिषु गन्धर्ववेदविशेषेषु, हस्तिशिक्षायाम्, तुरग-वयो-ज्ञानेषु, पुरुषलक्षणेषु, चित्रकर्मणि, यन्त्रच्छेद्ये, पुस्तकव्यापारे, लेख्यकर्मणि, सर्वासु द्यूतकलासु, गन्धशास्त्रेषु, शकुनि-रुत-ज्ञाने, ग्रहगणिते, रत्नपरीक्षासु, दारुकर्मणि, दन्तव्यापारे, वास्तुविद्यासु, आयुर्वेदे, मन्त्रप्रयोगे, विषापहरणे, सुरङ्गोपभेदे, तरणे, लङ्घने, प्लुतिषु, आरोहणे, रतितन्त्रेषु, इन्द्रजाले, कथासु, नाटकेषु, आख्यायिकासु, काव्येषु, महाभारत-पुराणेतिहास-रामायणेषु, सर्वलिपिषु, सर्वदेशभाषासु, सर्वसंज्ञासु, शिल्पेषु, छन्दःसु अन्येषु अपि कलाविशेषेषु परं कौशलम् अवाप।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

चन्द्रापीडः अपि चन्द्रापीड़ ने भी, अचिरेण एव कालेन थोड़े ही समय में,...आचार्यैः आचार्यों से उपदिश्यमानः उपदेश पाने पर सर्वाः सभी विद्याः विद्याओं को जग्राह ग्रहण कर लिया—सीख लिया। अतिनिर्मले अत्यन्त निर्मल मणिदर्पणे इव मणि दर्पण के समान तस्मिन् उसमें सकलः सम्पूर्ण कलाकलापः कलासमूह सञ्चक्राम संक्रान्त हो गया। तथाहि जैसे कि पदे व्याकरण में, वाक्ये मीमांसा में, प्रमाणे न्याय में, धर्मशास्त्रे धर्मशास्त्र में, राजनीतिषु राजनीति में, व्यायामविद्यासु सब प्रकार की व्यायाम विद्या में, सर्वेषु सभी आयुध विशेषेषु अस्त्रशस्त्रों में, रथचर्यासु रथ हाँकने में, गजपृष्ठेषु हाथी पर चढ़ने में, तुरङ्गमेषु अश्वविद्या में,...वाद्येषु विविध वाद्यों में, भरतादि-प्रणीतेषु भरत आदि आचार्यों द्वारा प्रणीत नृत्यशास्त्रेषु नृत्यशास्त्रों में, नारदीय प्रभृतिषु नारद आदि प्रणीत गन्धर्ववेद विशेषेषु सङ्गीत विद्याओं में, हस्तिशिक्षायाम् हस्ति शिक्षा में, तुरग-वयो-ज्ञानेषु घोड़ों की अवस्था जानने में, पुरुषलक्षणेषु पुरुषों के लक्षण पहचानने में, चित्रकर्मणि चित्रविद्या में, यन्त्रच्छेद्ये वस्त्र या दीवार पर चित्र काढ़ने में, पुस्तकव्यापारे ग्रन्थरचना में, लेख्यकर्मणि मूर्तिकला में, सर्वासु समस्त द्यूतकलासु द्यूतकलाओं में, गन्धशास्त्रेषु गन्धशास्त्र में, शकुनि-रुत-ज्ञाने पक्षियों की बोली समझने में, ग्रहगणिते ज्योतिः शास्त्र में, रत्नपरीक्षासु रत्नपरीक्षा में, दारुकर्मणि लकड़ी के काम में, दन्तव्यापारे हाथी दाँत के काम में, वास्तुविद्यासु गृहनिर्माण विद्या में, आयुर्वेदे आयुर्वेद में, मन्त्रप्रयोगे मन्त्रों का प्रयोग करने में, विषापहरणे विष उतारने में, सुरङ्गोपभेदे सुरङ्ग बनाने में, तरणे तैरने में, लङ्घने लाँघने में, प्लुतिषु कूदने में, आरोहणे चढ़ने में, रतितन्त्रेषु कामशास्त्र में, इन्द्रजाले इन्द्रजाल में, कथासु कथाओं में, नाटकेषु नाटकों में, आख्यायिकासु कहानियों में, काव्येषु काव्यों में, महाभारत-पुराणेतिहास-रामायणेषु महाभारत, पुराण, इतिहास तथा रामायण आदि ग्रन्थों में, सर्वलिपिषु सब लिपियों में, सर्वदेशभाषासु

सब देशों की भाषाओं में, सर्वसंज्ञासु सब सङ्केतों में, शिल्पेषु कारीगरी में, छन्दःसु छन्दों में (तथा) अन्येषु अपि और भी कलाविशेषेषु अनेक कलाओं में परं अत्यन्त निपुणताम् निपुणता को अवाप प्राप्त कर लिया।

सप्तमी एवं प्रथमा

महाराज युधिष्ठिर का स्वभाव

अभिन्नो भ्रातृषु, स्वच्छचित्तो मित्रेषु, स्निग्धो बन्धुषु, निसर्गरक्तः कलत्रेषु, विनयभङ्गुरो गुरुषु, प्रसादनिष्ठो भृत्येषु महाराजो युधिष्ठिरः।

—बालभारतम्

महाराजः युधिष्ठिरः महाराज युधिष्ठिर भ्रातृषु भाइयों में अभिन्नः भेद-भाव रहित, मित्रेषु मित्रों में स्वच्छचित्तः स्वच्छ हृदय, बन्धुषु बन्धु-बान्धवों में स्निग्धः स्नेहयुक्त, कलत्रेषु स्त्रियों में निसर्गरक्तः स्वभावतः अनुरागी, गुरुषु गुरुजनों में विनयभङ्गुरः विनय से नम्र (तथा) भृत्येषु नौकरों में प्रसादनिष्ठः प्रसन्नता से पूर्ण (रहते हैं)।

सप्तमी एवं प्रथमा

दुर्जनों का स्वभाव

स्निग्धेषु अपि रूक्षाः, ऋजुषु अपि वक्राः, साधुषु अपि असाधवः, गुणवत्सु अपि दुष्टप्रकृतयः, भर्तरि अपि अभृत्यात्मानः, रागिषु अपि क्रुद्धाः, निराह्लादे अपि आदित्सवः, मित्रेषु अपि द्रोहिणः, विश्वस्तानाम् अपि घातकाः, भीतेषु अपि प्रहारिणः, प्रीतिपरेषु अपि द्वेषिणः, विनीतेषु अपि उद्धताः,

दयापरेषु अपि निर्दयाः, स्त्रीषु अपि शूराः, भृत्येषु अपि क्रूराः, दीनेषु अपि दारुणाः ।

—कादम्बरी, उत्तरार्द्ध

......(दुर्जन लोग) स्निग्धेषु अपि स्नेहियों के साथ भी रूक्षाः रूक्ष, ऋजुषु अपि सरल लोगों के साथ भी वक्राः कुटिल, साधुषु अपि साधुजनों के लिये भी असाधवः असाधु, गुणवत्सु अपि गुणवान लोगों के साथ भी दुष्टप्रकृतयः दुष्टता का व्यवहार रखने वाले, भर्तरि अपि स्वामी के साथ भी अभृत्यात्मानः भृत्य जैसा व्यवहार न रखने वाले, रागिषु अपि अनुरागियों के ऊपर भी क्रुद्धाः क्रोध करने वाला, निरीहात् अपि निर्लोभ पुरुष से भी आदित्सवः लेने की इच्छा रखने वाले, मित्रेषु अपि मित्रों के साथ भी द्रोहिणः द्रोह करने वाले, विश्वस्तानाम् अपि विश्वासी पुरुषों के भी घातकाः घातक, भीतेषु अपि भयभीत लोगों पर भी प्रहारिणः प्रहार करने वाले, प्रीतिपरेषु अपि प्रीति करने वालों के साथ भी द्वेषिणः द्वेष करने वाले, विनीतेषु अपि विनीत पुरुषों के साथ भी उद्धताः उद्धत रहने वाले, दयापरेषु अपि दयालु पुरुषों पर भी निर्दयाः निर्दय, स्त्रीषु अपि स्त्रियों पर भी शूराः शूरता दिखाने वाले, भृत्येषु अपि भृत्यों के ऊपर भी क्रूराः क्रूर रहने वाले (तथा) दीनेषु अपि दीनों के लिये भी दारुणाः दारुण (होते हैं)।



२–विशेष्य विशेषण प्रकरणम्

विदर्भ-देश के राजा का वर्णन

विदर्भो नाम जनपदः। तस्मिन् भोजवंश-भूषणम्, अंशावतार इव धर्मस्य, अतिसत्वः, सत्यवादी, वदान्यः, विनीतः, विनेता प्रजानाम्, रञ्जितभृत्यः, कीर्तिमान्, उदग्रः बुद्धिमूर्तिभ्याम्, उत्थानशीलः, शास्त्रप्रमाणकः, शक्य-भव्यकल्पारम्भी, संभावयिता बुधान्, प्रभावयिता सेवकान्, उद्भावयिता बन्धून्, न्यग्भावयिता शत्रून्, असंबद्ध-प्रलापेसु अदत्तकर्णः, कदाचिदपि अवितृष्णो गुणेषु, अतिनदीष्णः कलासु, नेदिष्ठो धर्मार्थसंहितासु, स्वल्पेऽपि सुकृते सुतरां प्रत्युपकर्ता, प्रत्यवेक्षिता कोशवाहनयोः, यत्नेन परीक्षिता सर्वाध्यक्षाणाम्, उत्साहयिता कृतकर्मणाम् अनुरूपैर्दानमानैः, सद्यःप्रतिकर्ता दैवमानुषीणाम् आपदाम्, षाड्गुण्योपयोग-निपुणः, मनुमार्गेण प्रणेता चातुर्वर्ण्यस्य, पुण्यश्लोकः पुण्यवर्मा नाम आसीत्।

—दशकुमारचरितम्, उत्तरपीठिका, अष्टम उच्छ्वास

विदर्भो नाम विदर्भ नाम का जनपदः एक जनपद है। तस्मिन् उसमें भोजवंश-भूषणम् भोजवंश के भूषण, धर्मस्य धर्म के अंशावतार इव अंशावतार के समान, अतिसत्वः अत्यन्त सात्विक, सत्यवादी सत्य बोलने वाला, वदान्यः दाता, विनीतः विनययुक्त, प्रजानाम् प्रजाओं के विनेता शिक्षक, रञ्जितभृत्यः भृत्यों को प्रसन्न रखने वाला, कीर्तिमान् यशस्वी, बुद्धि-मूर्तिभ्याम् बुद्धि और स्वरूप से उदग्रः उन्नत, उत्थानशीलः उन्नति शील, शास्त्रप्रमाणकः शास्त्र को प्रमाण मानने

वाला, शक्य-भव्य-कल्पारम्भी संभव और हितकर कार्यों को आरम्भ करने वाला, बुधान् विद्वानों को संभावयिता सम्मानित करने वाला, सेवकान् सेवकों को प्रभावयिता प्रभावित करने वाला, बन्धून् बन्धुओं को उद्भावयिता समुन्नत बनाने वाला, शत्रून् शत्रुओं को न्यग्भावयिता नीचे गिराने वाला, असंवद्ध-प्रलापेषु ऊँटपटाँग बातों में अदत्त-कर्णः कान न करने वाला, गुणेषु गुणों के संग्रह में कदाचिदपि कभी भी अवितृष्णः सन्तुष्ट न रहने वाला, कलासु कलाओं में अतिनदीष्णः अत्यन्त निष्णात, धर्मार्थ-संहितासु धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र की संहिताओं में नेदिष्ठः निपुण, स्वल्पे अपि थोड़े भी सुकृते उपकार में सुतरां बहुत अधिक प्रत्युपकर्ता प्रत्युपकार करने वाला, कोशवाहनयोः कोश और वाहन इन दोनों का प्रत्यवेक्षिता निरीक्षण करने वाला, सर्वाध्यक्षाणाम् सब अध्यक्षों का यत्नेन यत्नपूर्वक परीक्षिता परीक्षण करने वाला, कृतकर्मणाम् काम करनेवालों को अनुरूपैः यथायोग्य दान-मानैः दान और सम्मान से उत्साहयिता प्रोत्साहित करने वाला, दैवमानुषीणाम् दैवी और मानुषी आपदाम् आपत्तियों का सद्यः तत्काल प्रतिकर्ता प्रतीकार करने वाला, षाड्गुण्योपयोग-निपुणः सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, तथा द्वैध इन छ गुणों का समुचित उपयोग करने में निपुण, मनुमार्गेण मनु के कहे हुए मार्ग से चातुर्वर्ण्यस्य चारो वर्णों की प्रणेता सुव्यवस्था करने वाला, पुण्यश्लोकः पवित्र यश वाला पुण्यवर्मा नाम पुण्यवर्मा नाम का राजा, आसीत् था।

संसार की परिवर्तनशीलता

तात ! परिवर्ती संसारः, अवितर्कणीया दैवघटना, अवश्यम्भाविनो भावाः, सुखदुःखमय एव च संसारः, कस्य दुःखासम्भिन्नं सुखम् , कस्य निःशेषं पूर्णो अभिलाषः ? कस्य अपरिचित-पश्चा-

त्ताप-सङ्घर्षं हृदयम् , तत् पौर्वापर्येण आलोच्य धैर्यमेव धारणीयं धर्म-धारि-धौरेयैः ।

शिवराजविजयः, अष्टम निश्वास

तात ! संसारः संसार परिवर्ती परिवर्तनशील है, दैवघटना ईश्वरीय घटना अवितर्कणीया अतर्कणीय है, भावाः जनन-मरण आदि भाव अवश्यम्भाविनः अवश्यम्भावी हैं, च और संसारः संसार सुखदुःखमय एव सुखदुःखमय ही है । (फिर) कस्य किसका सुखम् सुख दुःखासम्भिन्नं दुःख से सर्वथा रहित है, कस्य किसकी अभिलाषाः अभिलाषायें निःशेषं पूर्णरूप से पूर्णाः पूरी हुई है ? कस्य किसका हृदयं हृदय अपरिचित-पश्चात्ताप-सङ्घर्षं पश्चात्तापों के संघर्ष से अपरिचित है ? तत् इस लिये (यह सत्र) पौर्वापर्येण आगे पीछे से आलोच्य देखकर-विचार कर धर्मधारि-धौरेयैः धर्म को धारण करने वालों में अग्रगण्य पुरुषों द्वारा धैर्यम् एव धैर्य ही धारणीयम् धारण करना चाहिये।

एक व्यक्ति द्वारा अपना दुःख प्रकाशन

अहह ! तस्याः तानि तानि भाषितानि, तानि तानि इङ्गितानि तानि तानि हसितानि, तानि तानि च रुदितानि शल्यानि इव निमग्नानि हृदये ।

शिवराजविजयः, अष्टम निश्वास

अहह ! अहह तस्याः उसकी तानि तानि वे वे भाषितानि बातें, तानि तानि वे वे इङ्गितानि चेष्टायें, तानि तानि वे वे भ्रूविभ्रमाणि भौंहो के विभ्रम, तानि तानि वे वे प्रेक्षितानि दृष्टियाँ, तानि तानि वे वे हसितानि हास्य, तानि तानि वे वे रुदितानि विलाप शल्यानि इव शल्य के समान हृदये हृदय में निमग्नानि निमग्न हैं—डूबे हुए हैं—धँसे हुए हैं, चुभे हुए हैं ।

पिता द्वारा राजकुमार गन्धर्वदत्त को उपदेश

वत्स ! सदा धर्मवत्सलेन, प्रजानुरागिणा, प्रकृतिरञ्जिना, स्थानप्रदायिना, न्यायार्थ-गवेषिणा, निरर्थक-विधि-द्वेषिणा, स्मित-पूर्वाभिभाषिणा, गुणवृद्धसेविना, दुर्जनवर्जिना, दूरभावि-वितर्किणा, हिताहित-जात विवेकिना, विहित विधायिना, शक्यारम्भिणा, शक्य-फल-काङ्क्षिणा, कृतप्रत्यवेक्षिणा, कृत स्थापन व्यसनिना, गतानुशयद्रुहा, प्रमादकृतानुलोपिना, सचिव वचः प्रश्राविणा, पराकूत-वेदिना, परीक्षितपरिग्राहिणा, परिभवासहिष्णुना, शिक्षासहेन, देहरक्षावहेन, देशरक्षाकृता, युक्तदण्डयोजिना, रिपुमण्डल हृदय-भिदा, देशकालविदा, लिङ्गवेद्य-संविदा, यथार्थविदपसर्पेण, हृषीक-पारवश्यमुषा गुरुभक्तिजुषा च त्वया भवितव्यम् इति ।

गद्यचिन्तामणि ११.

वत्स ! त्वया तुम्हें सदा सर्वदा धर्मवत्सलेन धर्मवत्सल, प्रजानुरागिणा प्रजानुरागी, प्रकृतिरञ्जिना जनता का अनुरञ्जन करनेवाला, स्थान प्रदायिना सबको उचित स्थान देनेवाला, न्यायार्थ-गवेषिणा न्याययुक्त बात को ढूँढ़ने वाला, निरर्थक विधि द्वेषिणा निरर्थक कामों से द्वेष रखनेवाला, स्मितपूर्वाभिभाषिणा स्मितपूर्वक भाषण करनेवाला, गुणवृद्धसेविना गुणवृद्ध पुरुषों का सेवक, दुर्जनवर्जिना दुर्जनों का त्याग करने वाला, दूरभावि-वितर्किणा भावी बातों के लिये दूर तक सोचने वाला, हिताहित-जात-विवेकिना हित और अहित के विवेक से युक्त, विहित विधायिना विहित काम को करने वाला, शक्यारम्भिणा (अपनी शक्ति से) हो सकने वाले ही कार्यों का आरम्भ करनेवाला, शक्य-फल-काङ्क्षिणा मिल सकने योग्य फल का ही चाहने वाला, कृत-प्रत्यवेक्षिणा किये हुये कार्यों पर दृष्टि रखने वाला, कृत-स्थापन-व्यसनिना किये हुए कामों को सुस्थिर रखने का व्यसन वाला, गतानुशय-

द्रुहा बीती हुई बातों का पश्चाताप न करनेवाला, प्रमाद कृतानुलोपिना प्रमाद से की हुई बातों का सुधारने वाला, सचिव वचः प्रश्राविणा मन्त्रियों के वचन को सुनने वाला, पराकूत वेदिना दूसरों के अभिप्राय को समझने वाला, परीक्षित ग्राहिणा परीक्षा करके देखी हुई बातों का ही ग्रहण करने वाला, परिभवासहिष्णुना अपमान को न सहने वाला, शिक्षा सहेन (दूसरों द्वारा दी हुई) शिक्षाओं को सुनने और मानने की शक्ति रखने वाला, देहरक्षावहेन देह की रक्षा करने वाला, देशरक्षा-कृता देश की रक्षा करने वाला, युक्तदण्डयोजिना उचित दण्ड देने वाला, रिपुमण्डल हृदय भिदा रिपुमण्डल के हृदय का भेदन करने वाला, देशकालविदा देश और काल को समझने वाला, लिङ्गावेद्य-संविदा लक्षणों से न जानने योग्य विचार वाला, यथार्थविदपसर्पेण जिसके दूत यथार्थ बातों को जानने वाले हों ऐसा, हृषीक-पारवश्यमुषा इन्द्रियों की पराधीनता से रहित (तथा) गुरुभक्ति जुषा गुरुभक्ति से युक्त भवितव्यम् होना चाहिये।

कुछ दुर्लभ बातें

"···विभुः अनभिमानः, द्विजातिः अनेषणः, मुनिः अरोषणः, कपिः अचपलः, कविः अमत्सरः, वणिक् अतस्करः, प्रियजानिः अकुहनः, साधुः अदरिद्रः, द्रविणवान् अखलः, कीनाशः अनक्षिगतः, मृगयुः अहिंस्रः, सेवकः सुखी, कितवः कृतज्ञः, परिव्राड् अबुभुक्षुः, नृशंसः प्रियवाक्, अमात्यः सत्यवादी, राजसूनुः अदुर्विनीतः जगति दुर्लभः'···।

—हर्षचरितम् उच्छ्वास ६

विभुः शक्तिशाली अनभिमानः अभिमानहीन, द्विजातिः ब्राह्मण अनेषणः निस्पृह, मुनिः मुनि अरोषणः रोष न करनेवाला, कपिः बानर

अचपलः चंचलता से हीन, कविः कवि अमत्सरः मात्सर्यहीन, वणिक् बनिया अतस्करः चोरी न करने वाला, प्रियजानिः स्त्रीप्रेमी अथवा सुन्दर स्त्रीवाला पुरुष अकुहनः शंका से रहित, साधुः सज्जन अदरिद्रः धनाढ्य, द्रविणवान् सम्पन्न अखलः दुष्टता से रहित, कीनाशः क्षुद्रपुरुष अनक्षिगतः प्रिय, मृगयुः शिकारी अहिंस्रः अहिंसक, सेवकः सेवा करने वाला सुखी सुखी, कितवः जूआ खेलने वाला कृतज्ञः कृतज्ञ, परिव्राड् परिव्राजक अबुभुक्षुः बुभुक्षा से रहित, नृशंसः क्रूर प्रियवाक् प्रियवादी, अमात्यः मन्त्री सत्यवाक् सत्यवादी, राजसूनुः राजा का पुत्र अदुर्विनीतः अविनय से रहित (यह सब) जगति संसार में दुर्लभः दुर्लभ है ।

गरीब को किसी बात में यश नहीं

निर्धनो यदि उच्चः तदा सति स्तम्भः । यदि खर्वः तदा वामनः । यदि गौरः तदा आमवाती । यदि कृष्णः तदा वनेचर-भिल्लः । अल्पाहारः तदा मन्दः । बह्वाहारः तदा क्षारकृत् शनैश्चरो लग्नः । यदि आडम्बरी तदा विटः । यदि विनयी तदा भिक्षाचरो याचकः । यदि मितभाषी तदा मूको मूर्खश्च । यदि वाग्मी, वातुलः बहुभाषी भषलः प्रलापी । यदि क्षमो तदा भीरुः रङ्कश्च । यदि शूरः तदा धाटीवाहकः । किं बहुना ? निर्धनः कुत्रापि न पूजनीयः ।

उपदेशतरङ्गिणी १.

निर्धनः गरीब आदमी यदि उच्चः अगर लम्बा होता है तदा तो स्तम्भः खम्भा कहा जाता है । यदि खर्वः यदि नाटा होता है तदा तो वामनः बौना कहा जाता है! यदि गौरः अगर गौर वर्ण का होता है तदा तो आमवाती आमवात का रोगी माना जाता है । यदि कृष्णः अगर काला हुआ तो वनेचरभिल्लः वनेचर और भील समझा जाता है । अल्पाहारः अगर अल्पाहारी हुआ तदा तो मन्दः मन्द माना जाता है । बह्वाहारः यदि अधिक भोजन करने वाला हुआ तदा तो क्षारकृत् सब

खा जाने वाला शनैश्चरः लग्नः शनीचर लग गया है ऐसा कहा जाता है। यदि आडम्बरी अगर आडम्बर से, ठाट-बाट से रहता है तदा तो विटः बदमाश माना जाता है। यदि विनयी यदि विनयी होता है तदा तो भिक्षाचरः भिक्षा मांगने वाला याचकः याचक समझा जाता है। यदि मितभाषी यदि कम बोलता है तदा तो मूकः गूंगा मूर्खः च और मूर्ख समझा जाता है। यदि वाग्मी यदि बहुत बोलने वाला होता है तदा तो वातुलः वात रोगी, बहुभाषी बहुत बोलने वाला, भषकः भूकने (तथा) प्रलापी बक् बक् करने वाला माना जाता है। यदि क्षमी अगर क्षमाशील होता है तदा तो भीरुः डरपोक, रङ्कः च तथा दरिद्र समझा जाता है। यदि शूरः अगर वीर हुआ तदा तो धाटीवाहकः केवल हल्ला करने वाला समझा जाता है। किं बहुना! बहुत कहने से क्या! निर्धनः गरीब आदमी कुत्रापि कहीं भी न पूजनीयः पूजनीय नहीं होता।

ब्रह्म का स्वरूप

सहोवाच एतद् वै तदक्षरं गार्गि! ब्राह्मणा अभिवदन्ति—अस्थूलम्, अनणु, अह्रस्वम्, अदीर्घम्, अलोहितम्, अस्नेहम्, अच्छायम्, अतमः, अवायु, अनाकाशम्, असङ्गम्, अरसम्, अगन्धम्, अचक्षुष्कम्, अश्रोत्रम्, अवाग्, अमनः, अतेजस्कम्, अप्राणम्, अमुखम्, अमात्रम्, अनन्तरम्, अबाह्यम्।

—बृहदारण्यक उपनिषद् ३।८।८

स उन्होंने उवाच कहा—गार्गि! हे गार्गि! ब्राह्मणाः ब्रह्मज्ञानी लोग तद् उस अक्षरं अक्षर ब्रह्म को एतत् ऐसा अभिवदन्ति बतलाते हैं (कि वह) अस्थूलम् न स्थूल है, अनणु न अणु है, अह्रस्वम् न ह्रस्व है, अदीर्घम् न दीर्घ है, अलोहितम् न रक्त है, अस्नेहम् न द्रव है, अच्छायम् न छाया है, अतमः न तम है, अवायु न वायु है, अनाकाशम् न आकाश है, असङ्गम् न सङ्गवान् है, अरसम् न रस है,

अगन्धम् न गन्ध है, अचक्षुष्कम् न नेत्र है, अश्रोत्रम् न कर्ण है, अवाक् न वाणी है, अमनः न मन है। अतेजस्कम् न तेज है, अप्राणम् न प्राण है, अमुखम् न मुख है, अमात्रम् न माप है, अनन्तरम् न उसमें अन्तर है, (और) अबाह्यम् न बाहर है।

मलयसुन्दरी के प्रति तिलकमञ्जरी द्वारा अपनी उद्विग्न अवस्था का वर्णन

भगिनिके! न जाने किमावेदयामि? अत्यर्थमाकुलं मे चित्तम्। उद्गतो निर्निमित्त एवोद्वेगः। प्रिया अपि जनालापा न जनयन्ति प्रीतिम्। अनुलेपनाय प्रवृत्तं सान्द्रमपि चन्दनं दुनोति गात्राणि। पश्यदिव किञ्चिदतिभीषणं पुरो मुहुर्मुहुः कम्पते दक्षिणमक्षि। न ज्ञायते किमस्य कारणम् अकाण्ड एव जातस्य प्रकृतिविपर्ययस्य?

—तिलकमञ्जरी

भगिनिके बहन! न जाने मैं नहीं समझ पा रही हूँ कि किम् आवेदयामि क्या कहूँ? मे चित्तम् मेरा चित्त अत्यर्थम् अत्यन्त आकुलम् आकुल हो गया है। निर्निमित्त एव बिना कारण के ही उद्वेगः उद्वेग उद्गतः हो गया है। प्रियाः अपि प्रिय भी जनालापाः लोगों के साथ होने वाले वार्तालाप प्रीतिम् प्रसन्नता न जनयन्ति नहीं उत्पन्न करते। अनुलेपनाय शरीर में लगाने के लिये प्रवृत्तं प्रयुक्त सान्द्रम् अपि घना भी चन्दनं चन्दन गात्राणि अङ्गों को दुनोति दुःख देता है। पुरः आगे किञ्चित् कोई अतिभीषणम् अत्यन्त भीषण वस्तु पश्यत् इव मानो देखती हुई दक्षिणम् अक्षि दाहिनी आँख मुहुर्मुहुः बार-बार कम्पते फरक रही है। न ज्ञायते नहीं मालूम होता कि अकाण्डे एव असमय में ही जातस्य उत्पन्न अस्य इस प्रकृतिविपर्ययस्य प्रकृति के विपर्यास का किं कारणम् क्या कारण है?

३–तिङन्त प्रकरणम्

लट् लकार

आत्मा के सम्बन्ध में जिज्ञासा

कतरः स आत्मा येन वा पश्यति, येन वा शृणोति, येन वा गन्धान् आजिघ्रति, येन वा वाचं व्याकरोति, येन वा स्वादु च अस्वादु च विजानाति ।

—ऐतरेयोपनिषद् ३।१

स वह कतरः कौन आत्मा आत्मा है येन जिससे (मनुष्य) पश्यति देखता है, येन जिससे शृणोति सुनता है, येन जिससे गन्धान् गन्धों को आजिघ्रति सूँघता है, येन जिससे वाचम् वाणी को व्याकरोति स्पष्ट बोलता है च तथा येन जिससे स्वादु स्वादयुक्त च और अस्वादु स्वादहीन वस्तु को विजानाति जानता है ? पहचानता है ?

विष्णु के परम पद की परिभाषा

यत्र न सूर्यस्तपति, यत्र न वायुर्वाति, यत्र न चन्द्रमा भाति, यत्र न नक्षत्राणि भान्ति, यत्र न अग्निर्दहति, यत्र न मृत्यु: प्रविशति, यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः तद् विष्णोः परमं पदम्......।

—बृहज्जाबालोपनिषद्

यत्र जहाँ न सूर्यः न सूर्य तपति तपता है, यत्र जहाँ न वायुः न वायु वाति बहता है, यत्र जहाँ न चन्द्रमाः न चन्द्रमा भाति प्रकाशित होता है, यत्र जहाँ न नक्षत्राणि न नक्षत्र भान्ति प्रकाशित होते हैं, यत्र

जहाँ न अग्निः न अग्नि दहति जलाता है, यत्र जहाँ न मृत्युः न मृत्यु प्रविशति प्रवेश पाता है, यत्र जहाँ न दुःखानि न दुःख प्रविशन्ति प्रवेश पाते हैं, यत्र जहाँ गत्वा जा कर योगिनः योगी जन न निवर्तन्ते पुनः निवृत्त नहीं होते—लौटते नहीं, तद् वह विष्णोः विष्णु का परमं परम पदं पद (है)।

संसारी पुरुष की दुःखमय अवस्था

विषमो हि अतितरां संसाररागः–भोगीव दशति, असिरिव छिनत्ति, कुन्त इव वेधयति, रज्जुरिव आवेष्टयति, पावक इव दहति, रात्रिरिव अन्धयति, पाषाण इव विवशीकरोति, हरति प्रज्ञां, नाशयति स्थितिं, पातयति मोहान्धकूपे, तृष्णया जर्जरीकरोति, न तदस्ति किञ्चिद् दुःखं संसारी यन्न प्राप्नोति।

(योगवाशिष्ठम् मु० १२, १४)

संसाररागः सांसारिक प्रेम अतितरां अत्यन्त ही विषमः विषम है, भयंकर है। (क्योंकि यह) भोगी इव साँप के समान दशति डंसता है; असिः इव तलवार के समान छिनत्ति काटता है, कुन्तः इव भाले के समान वेधयति वेधता है, रज्जुः इव रस्सी के समान आवेष्टयति फाँसता है, पावकः इव आग के समान दहति जलाता है, रात्रिः इव रात के समान अन्धयति अन्धा कर देता है, पाषाण इव पत्थर के समान विवशीकरोति विवश कर देता है, प्रज्ञां बुद्धि को हरति हर लेता है, स्थितिं स्थिति को नाशयति बिगाड देता है, मोहान्धकूपे मोहरूपी अन्धेरे कूप में पातयति गिरा देता है [तथा] तृष्णया तृष्णा से जर्जरीकरोति जर्जरित कर देता है। तद् वह किञ्चिद् कोई दुःखं दुःख न अस्ति नहीं है यत् जिसे संसारी संसारी मनुष्य न प्राप्नोति नहीं पाता है, नहीं भोगता है।

प्रसन्न पुरुष के लक्षण

दर्शने प्रसीदति । वाक्यं प्रतिगृह्णाति । आसनं ददाति । विविक्ते दर्शयते । शङ्कास्थाने न अतिशङ्कते । कथायां रमते । परिज्ञाप्येषु अवेक्षते । पथ्यमुक्तं सहते । स्मयमानो नियुङ्क्ते । हस्तेन स्पृशति । श्लाघ्ये न उपहसति । परोक्षे गुणं ब्रवीति । भक्ष्येषु स्मरति । सह विहारं याति । व्यसने अभ्यवपद्यते । तद्भक्तीन् पूजयति । गुह्यम् आचष्टे । मानं वर्धयति । अर्थं करोति । अनर्थं प्रतिहन्ति । इति तुष्टज्ञानम् ।

कौटलीय अर्थशास्त्र, अधि. ५, अध्या. ६ प्रक. ।

दर्शने देखने पर प्रसीदति प्रसन्न होता है । वाक्यं वचन प्रतिगृह्णाति मानता है । आसनं आसन ददाति देता है । विविक्ते एकान्त में दर्शयते मिलता है । शङ्कास्थाने शङ्का करने योग्य अवसर पर न अतिशङ्कते शङ्का नहीं करता है । कथायां बात करने में रमते मन लगाता है । परिज्ञाप्येषु बताने योग्य बातों के विषय में अवेक्षते अपेक्षा करता है । उक्तं कहे हुए पथ्य हितकर वचन को सहते सहता है । स्मयमानः मुस्कुराता हुआ नियुंक्ते काम में लगाता है । हस्तेन हाथ से स्पृशति स्पर्श करता है । श्लाघ्ये अच्छी बात में न उपहसति उपहास नहीं करता है । परोक्षे परोक्ष में गुणं गुण ब्रवीति बखानता है । भक्ष्येषु खाने पीने के अवसरों पर स्मरति स्मरण करता है । सह साथ में विहारं विहार करने याति जाता है । व्यसने दुःख में अभ्यवपद्यते उपस्थित रहता है । तद्भक्तीन् उसके साथियों का पूजयति सम्मान करता है । गुह्यं गुप्त बात का आचष्टे कहता है । मानं मान वर्धयति बढ़ाता है । अर्थं काम करोति करता है । अनर्थं अनर्थ को प्रतिहन्ति दूर करता है । इति यह तुष्टज्ञानम् प्रसन्न पुरुषों के जानने के लक्षण हैं ।

विहारभद्र द्वारा अपने ऊपर राजा पुण्यवर्मा के अप्रसन्न होने के लक्षणों का वर्णन

न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्ते स्पृशति, न व्यसनेषु अनुकम्पते, न उत्सवेषु अनुगृह्णाति, न विलोभनवस्तु प्रेषयति, न मत्सुकृतानि प्रगणयति, न मे गृहवार्तां पृच्छति, न मत्पक्षान् प्रत्यवेक्षते, न माम् आसन्न-कार्येषु आभ्यन्तरीकरोति, न माम् अन्तःपुरं प्रवेशयति।

अपि च माम् अनर्हेषु कर्मसु नियुङ्क्ते, मदासनम् अन्यैः अवष्टभ्यमानम् अनुजानाति, मद्वैरिषु विश्रम्भं दर्शयति, मदुक्तस्य उत्तरं न ददाति, मत्समानदोषान् विगर्हति, मर्मणि माम् उपहसति, स्वमतमपि मया वर्ण्यमानं प्रतिक्षिपति, महार्हाणि वस्तूनि मत्प्रहितानि न अभिनन्दति, नयज्ञानां स्खलितानि मत्समक्षं मूर्खैः उद्घोषयति।

—दशकुमारचरितम्, उत्तरपीठिका, अष्टम उच्छ्वास

न मां न मुझे स्निग्धं स्नेहभरी दृष्टि से पश्यति देखता है, न स्मितपूर्वं न मुस्कुराहट के साथ भाषते बातें करता है, न रहस्यानि न गुप्त बातों को विवृणोति बताता है, न हस्तेन न हाथ से स्पृशति छूता है, न व्यसनेषु न कष्टों में अनुकम्पते कृपा करता है, न उत्सवेषु न उत्सवों में अनुगृह्णाति अनुग्रह दिखलाता है, न विलोभन-वस्तु न (कोई) सुन्दर वस्तु प्रेषयति भेजता है, न मत्सुकृतानि न मेरे अच्छे कामों को प्रगणयति कुछ समझता है, न मे न मेरी गृहवार्तां घर की बातों को पृच्छति पूछता है, न मत्पक्षान् न मेरे पक्षवालों की ओर प्रत्यवेक्षते देखता है, न माम् न मुझे आसन्नकार्येषु उपस्थित कार्यों में आभ्यन्तरीकरोति नियुक्त करता है, (और) न माम् न मुझे अन्तःपुरे अन्तः पुर में प्रवेशयति जाने देता है।

अपि च और माम् मुझे अनर्हेषु अयोग्य कर्मसु कामों में नियुङ्क्ते नियुक्त करता है, मदासनम् मेरे आसन को, पद को अन्यैः दूसरों द्वारा अवष्टभ्यमानम् ग्रहण किये जाने की अनुजानाति अनुमति देता है, मद्वैरिषु मेरे शत्रुओं पर विश्रम्भं विश्वास दर्शयति दिखलाता है, मदुक्तस्य मेरे कथन का उत्तरं उत्तर न ददाति नहीं देता है, मत्स-मान-दोषान् मेरे समान दोषवाले लोगों की विगर्हति निन्दा करता है, मर्मणि (मेरी) मर्म की बातों के विषय में माम् मेरा उपहसति उप-हास करता है, मया मेरे द्वारा वर्ण्यमानं वर्णित किये जाने वाले स्वमतम् अपि अपने मत पर भी प्रतिक्षिपति आक्षेप करता है, मत्प्रहितानि मेरे द्वारा भेजी हुई महार्हाणि बहुमूल्य वस्तूनि वस्तुओं को (भी) न अभिनन्दति आदर से अङ्गीकार नहीं करता, नयज्ञानां नीतिज्ञों की स्खलितानि गलतियों को मत्समक्षं मेरे सामने मूर्खैः मूर्खों के द्वारा उद्घो-षयति उद्घोषित करता है ।

तारापीड द्वारा यौवन के दोषों का वर्णन

किमस्ति कश्चिदसौ इयति जीवलोके यस्य निर्विकारं यौवन-मतिक्रान्तम् ? यौवनाऽवतारे हि शैशवेन एव सह गलति गुरुजन-स्नेहः, वयसैव सह आरोहति अभिनवा प्रीतिः, वक्षसैव सह विस्तीर्यते वाञ्छा, बलेनैव सह उपचीयते मदः, दोर्द्वयेनैव सह स्थूलताम् आपद्यते धीः, मध्येनैव सह कार्श्यम् उपयाति श्रुतम्, ऊरुयुगलेनैव अपचीयते विनयः, श्मश्रुभिरेव सह उज्जृम्भते मलि-नता-हेतुः मोहः, आकारेणैव सह हृदयाद् आविर्भवन्ति विकाराः ।

किम् क्या इयति इतने बड़े जीवलोके संसार से अस्ति है कश्चिन् कोई असौ वैसा आदमी यस्य जिसका यौवनं यौवन निर्विकारं बिना विकार के अतिक्रान्तम् बीत गया हो ? हि क्योंकि यौवनाऽवतारे यौवन के उतरने पर, आ जाने पर शैशवेन एव शैशव के ही सह साथ

गुरुजन-स्नेहः गुरुजनों के साथ किया जाने वाला स्नेह गलति समाप्त होने लगता है, वयसा एव वय के ही सह साथ अभिनवा नवीन प्रीतिः प्रेम आरोहति बढ़ने लगता है, वक्षसा एव छाती के ही सह साथ वाञ्छा इच्छा विस्तीर्यते विस्तृत होने लगती है, वलेन एव सह वल के ही साथ मदः मद उपचीयते बढ़ने लगता है, दोर्द्वयेन दोनों हाथों के एव ही सह साथ धीः बुद्धि स्थूलताम् स्थूलता को आपद्यते प्राप्त हो जाती है, मध्येन एव सह मध्य अर्थात् कमर के ही साथ श्रुतं ज्ञान, कार्श्यं कृशता को उपयाति प्राप्त हो जाता है, ऊरुयुगलेन दोनों जघनों के एव ही सह साथ विनयः विनय अपचीयते घट जाता है, श्मश्रुभिः एव सह दाढ़ी-मूछ के ही साथ मलिनता-हेतुः मलिनता का कारण मोहः मोह उज्जृम्भते उभड़ आता है, आकारेण एव सह आकार के ही साथ हृदयात् हृदय से विकाराः विकार आविर्भवन्ति प्रगट होने लगते हैं।

कादम्बरी के प्रति मेघनाद द्वारा उत्तम भृत्यों के गुणों का वर्णन

भृत्या अपि ते एव, ये सम्पत्तेः विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते, समुन्नम्यमानाः सुतरां अवनमन्ति, आलप्यमाना न समानालापा जायन्ते, स्तूयमाना न उत्सिच्यन्ते, क्षिप्यमाणा न अपराधं गृह्णन्ति, उच्यमाना न प्रतीपं भाषन्ते, पृष्टाः प्रियहितं विज्ञापयन्ति, अनादिष्टाः कुर्वन्ति, कृत्वा न जल्पन्ति, पराक्रम्य न विकत्थन्ते, कत्थ्यमाना अपि लज्जाम् उद्वहन्ति, महाहवेषु अग्रतो ध्वजभूता लक्ष्यन्ते, दानकाले पलायमानाः पृष्ठतो निलीयन्ते, धनात् स्नेहं बहु मन्यन्ते, जीवितात् पुरो मरणं अभिवाञ्छन्ति, गृहादपि स्वामिपादमूले सुखं तिष्ठन्ति।

—कादम्बरी उत्तरार्द्ध

भृत्याः अपि भृत्य भी ते एव वे ही हैं ये जो सम्पत्तेः सम्पत्ति से विपत्तौ विपत्ति में सविशेषं विशेषरूप से सेवन्ते सेवा करते हैं, समुन्नम्यमानाः समुन्नत किये जाने पर सुतरां अत्यन्त अवनमन्ति विनम्र हो जाते हैं, आलप्यमानाः बातचीत करने पर समानालापाः बराबरी में बातचीत करने के अभ्यासी न जायन्ते नहीं होते, स्तूयमानाः प्रशंसा किये जाने पर न उत्सिच्यन्ते गर्व नहीं करते, क्षिप्यमाणाः आक्षेप किये जाने पर (उसे) अपराधं अपराध न गृह्णन्ति नहीं मानते, उच्यमानाः कोई बात कहने पर प्रतीपं उल्टी न भाषन्ते बात नहीं करते, पृष्टाः पूछे जाने पर प्रियहितं प्रिय और हितकर बातें विज्ञापयन्ति बतलाते हैं, अनादिष्टाः आदेश न दिये जाने पर भी कुर्वन्ति काम करते हैं, कृत्वा काम करके न जल्पन्ति कहते नहीं फिरते, पराक्रम्य पराक्रम करके न विकत्थन्ते अपनी प्रशंसा नहीं करते, कत्थ्यमानाः अपि प्रशंसा करने पर भी लज्जाम् उद्वहन्ति लज्जित होते हैं, महाहवेषु बड़े-बड़े युद्धों में ध्वजभूताः ध्वज के समान अग्रतः आगे ही लक्ष्यन्ते दीख पड़ते हैं, दानकाले दान के अवसर पर अर्थात् स्वामी की ओर से कुछ मिलने के अवसर पर पलायमानाः भागते हुए पृष्ठतः पीछे निलीयन्ते छिप जाते हैं, धनात् धन से स्नेहम् स्नेह को बहु बहुत मन्यन्ते मानते हैं, जीवितात् जीने से पुरः पहले मरणं मरना अभिवाञ्छन्ति चाहते हैं (तथा) गृहाद् अपि घर से भी स्वामि-पाद-मूले स्वामी के चरणों के समीप सुखं अधिक सुख से तिष्ठन्ति रहते हैं।

एक राजा के यथोचित राज्यसंचालन का वर्णन

यथा न धर्मः सीदति, यथा न अर्थः क्षयं व्रजति, यथा न राज्यलक्ष्मीः उन्मनायते, यथा न कीर्तिः मन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणाः श्यामायन्ते, यथा न श्रुतम् उपहस्यते, यथा

न परिजनो विरज्यते, यथा न मित्रवर्गो ग्लायति, यथा न शत्रवः तरलायन्ते तथा सर्वम् अन्वतिष्ठत्।

— तिलकमंजरी

यथा जिस प्रकार धर्मः धर्म न सीदति नहीं विगड़ता, यथा जिस प्रकार अर्थः अर्थ क्षयं क्षय को, विनाश को न व्रजति नहीं पहुँचता, यथा जिस प्रकार राज्यलक्ष्मीः राज्य लक्ष्मी न उन्मनायते उन्मनस्क नहीं होती, यथा जिस प्रकार कीर्तिः यश न मन्दायते मन्द नहीं होती, यथा जिस प्रकार प्रतापः प्रताप न निर्वाति नहीं बुझता, यथा जिस प्रकार गुणाः गुण न श्यामायन्ते मलिन नहीं होते, यथा जिस प्रकार श्रुतम् अध्ययन, ज्ञान न उपहस्यते उपहास का पात्र नहीं होता, यथा जिस प्रकार परिजनः परिजन न विरज्यते विरक्त नहीं होता, यथा जिस प्रकार मित्रवर्गः मित्रवर्ग न ग्लायति अप्रसन्न नहीं होता, यथा जिस प्रकार शत्रवः शत्रु गण न तरलायन्ते तरलित नहीं होते तथा उसी प्रकार सर्वम् सब काम अन्वतिष्ठत् किया।

शुकनास द्वारा लक्ष्मी के दुष्ट स्वभाव का वर्णन

इयम् अनार्या लब्धाऽपि खलु दुःखेन पाल्यते।......परिपालिताऽपि प्रपलायते। न परिचयं रक्षतिं। न अभिजनम् ईक्षते। न रूपम् आलोकयते। न कुलक्रमम् अनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतम् आकर्णयति। न धर्मम् अनुरुध्यते। न त्यागम् आद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। न आचारं पालयति। न सत्यम् अवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्व-नगर-लेखा इव पश्यत एव नश्यति।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

इयम् यह अनार्या नीच (लक्ष्मी) लब्धा अपि मिलने पर भी दुःखेन कठिनाई से पाल्यते सुरक्षित रह पाती है, परिपालिता अपि

सुरक्षित रखने पर भी अपलायते बहुत तेजी से भाग जाती है, न न परिचयं परिचय का रक्षति लेहाज रखती है. न अभिजनम् न खानदान ईक्षते देखती है, न रूपम् न रूप आलोकयते देखती है, न कुलक्रमम् न कुल की मर्यादा का अनुवर्तते अनुसरण करती है, न शीलं न शील पश्यति देखती है, न वैदग्ध्यं न निपुणता को गणयति कुछ समझती है, न श्रुतम् न ज्ञान की बात आकर्णयति सुनती है, न धर्मम् न धर्म को अनुरुध्यते मानती है, न त्यागं न त्याग का आद्रियते आदर करती है, न विशेषज्ञतां न विशेषज्ञताका विचारयति विचार करती है, न आचारं न आचार का पालयति पालन करती है, न सत्यं न सत्य को अवबुध्यते समझती है (तथा) न लक्षणं न लक्षण को प्रमाणीकरोति प्रमाण मानती है। गन्धर्व-नगर-लेखा इव गन्धर्व नगरों की समान पश्यत एव देखते-देखते ही नश्यति गायब हो जाती है।

धनिकों के दुष्ट स्वभाव का वर्णन

मिथ्यामाहात्म्य-गर्व-निर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, न अर्चयन्ति अर्चनीयान्, न अभिवादयन्ति अभिवादनार्हान्, न अभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्।... उपहसन्ति विद्वज्जनम्,...प्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्, ...असूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने।

सर्वथा तम् अभिनन्दन्ति, तम् आलपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, सम्वर्द्धयन्ति, तेन सह सुखम् अवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रताम् उपनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तम् आप्तताम् आपादयन्ति यः अहर्निशम् अनवरतम् उपरचिताञ्जलिः अधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति यो वा माहात्म्यम् उद्भावयति।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

मिथ्या-माहात्म्य-गर्व-निर्भराः झूठे बड़प्पन के अभिमान से भरे हुए (धनी लोग) न देवताभ्यः न देवताओं को प्रणमन्ति प्रणाम करते हैं, न द्विजातीन् न द्विजातियों का पूजयन्ति आदर करते हैं, न मान्यान् न माननीयों का मानयन्ति सम्मान करते हैं, न अर्चनीयान् न पूजनीयों की अर्चयन्ति पूजा करते हैं, न अभिवादनार्हान् न प्रणाम करने योग्य पुरुषों को अभिवादयन्ति प्रणाम करते हैं, न गुरून् न गुरुजनों का अभ्युत्तिष्ठन्ति अभ्युत्थान करते हैं। विद्वज्जनं विद्वान् लोगों का उपहसन्ति उपहास करते हैं, वृद्धजनोपदेशम् वृद्ध पुरुषों के उपदेश को प्रलपितम् इति प्रलाप के समान पश्यन्ति देखते हैं, सचिवोपदेशाय मन्त्रियों के उपदेश से असूयन्ति असूया रखते हैं, (तथा) हितवादिने हितकर बात कहने वाले पर कुप्यन्ति कोप करते हैं।

सर्वथा सब प्रकार से तम् उसी का अभिनन्दन्ति अभिनन्दन करते हैं, तम् उसी से आलपन्ति बातें करते हैं, तम् उसीको पार्श्वे पास में कुर्वन्ति रखते हैं, तम् उसी को संवर्द्धयन्ति बढ़ाते हैं, तेन सह उसके साथ सुखम् सुख से अवतिष्ठन्ते रहते हैं, तस्मै उसी को ददति देते हैं, तम् उसी से मित्रताम् मित्रता उपनयन्ति करते हैं, तस्य उसी का वचनं वचन शृण्वन्ति सुनते हैं, तत्र वहीं वर्षन्ति बरसते हैं, तम् उसी को बहु बहुत मन्यन्ते मानते हैं, तम् उसी को आप्तताम् विश्वासपात्र आपादयन्ति बनाते हैं यः जो अहर्निशम् रातदिन अनवरतं निरन्तर उपरचिताञ्जलिः अञ्जलि बाँधकर (तथा) विगतान्यकर्तव्यः अन्य कर्तव्यों को छोड़कर अधिदैवतम् इव देवता के समान स्तौति स्तुति करता है वा अथवा यः जो माहात्म्यम् बड़प्पन उद्भावयति प्रगट करता है, गुणगान करता है।

चिरकाल तक युद्ध होने के दुष्परिणाम

यत्र च चिरं युद्धानि भवन्ति; तत्रैव प्रायशो रोगा आपतन्ति,

तत्रैव दरिद्रता पदम् आदधाति, तत्रैव च क्रमशः सर्वं महर्घता-माप्नुवद् भयानकं दुर्भिक्षं जनयति।

—शिवराजविजय, नवम निश्वास

च और यत्र जहाँ चिरं बहुत दिनों तक युद्धानि युद्ध भवन्ति होते रहे हैं तत्रैव वहीं पर प्रायशः प्रायः रोगाः रोग आपतन्ति आ पड़ते हैं, तत्रैव वहीं पर दरिद्रता गरीबी पदम् पैर आदधाति रखती है, च और तत्रैव वहीं पर क्रमशः धीरे धीरे सर्वं सब वस्तु महर्घताम् महगीं को प्राप्नुवत् प्राप्त करता हुआ (अर्थात् महंगा होता हुआ) भयानकं भयंकर दुर्भिक्षं अकाल को जनयति पैदा करता है।

पुत्र वही है जो अपने कुल को उज्ज्वल कर दे

तत् काव्यं यत् सभायां पठ्यते, तत् सुवर्णं यत् कषपट्टिकायां निवर्तते, सा गृहिणी या पतिं रञ्जयति, स पुत्रो यः कुलम् उज्ज्वलयति।

—कर्पूरमञ्जरी १ जवनिकान्तरम्

तत् वह काव्यं काव्य (है) यत् जो सभायां सभा में पठ्यते पढ़ा जाता है, तत् वह सुवर्णं सोना (है) यत् जो कषपट्टिकायां कसौटी पर निवर्तते ठीक उतरता है, सा वह गृहिणी स्त्री (है) या जो पतिम् पति को रञ्जयति प्रसन्न रखती है (और) स वह पुत्रः पुत्र है यः जो कुलम् कुल को उज्ज्वलयति उज्ज्वल कर देता है।

मदिरा आदि के दोष

दमयन्ती के प्रति नल की उक्ति

मदिराक्षि! मदयति मदिरा, तरलयति तारुण्यम्, अन्धयति

धनम्, उत्पथयति मन्मथः, विरूपयति रूपाभिमानः, खर्वयति गर्वः।

—नलचम्पू, उच्छ्वास ७

मदिराक्षि ! मोहक नेत्रों वाली दमयन्ती ! मदिरा मद्य मदयति (मनुष्य को) मतवाला बना देता है, तारुण्यम् जवानी तरलयति चंचल बना देती है, धनम् धन अन्धयति अन्धा बना डालता है, मन्मथः काम उत्पथयति मार्ग से विचलित कर देता है, रूपाभिमानः रूप का अभिमान विरूपयति रूप बिगाड़ देता है (तथा) गर्वः अहंकार खर्वयति छोटा बना देता है।

श्रीकृष्ण की बाललीला के सम्बन्ध में नन्दगोप की वसुदेव से उक्ति—

श्रुणोतु भर्ता। एकस्मिन् गेहे गत्वा क्षीरं पिबति। अन्यस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति। अपरस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिलति। अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते। इतरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते। किं बहुना, अस्माक घोषस्य पतिर्भवति।

—बालचरितम् अं० २

श्रुणोतु स्वामी सुनें स्वामी। एकस्मिन् एक गेहे घर में गत्वा जाकर क्षीरं दूध पिबति पीता है। अन्यस्मिन् दूसरे गेहे घर में गत्वा जाकर दधि दही भक्षयति खाता है। अपरस्मिन् दूसरे गेहे घर में गत्वा जाकर नवनीतं नवनीत गिलति निगल जाता है। अन्यस्मिन् दूसरे गेहे घर में गत्वा जाकर पायसं खीर भुङ्क्ते खा लेता है। इतरस्मिन् दूसरे गेहे घर में गत्वा जाकर तक्रघटं मट्ठे के घड़े को प्रलोकते देखता है। किं बहुना बहुत कहने से क्या लाभ ! अस्माकं हमारे घोषस्य घोठे का (मानों) पतिः मालिक भवति हो गया है।

दरिद्रता समस्त गुणों को नष्ट कर देती है

रिक्तस्य न वचो जीवति, नाभिजात्यं जागर्ति, न पौरुषं परिस्फुरति, न विद्या विद्योतते, न शीलमुन्मीलति, न शेमुषी समुन्मिषति, न धार्मिकता सम्भाव्यते, नाभिरूप्यं निरूप्यते, न प्रश्रयः प्रशस्यते, न कारुण्यं गण्यते, पाकः पलायते, विवेको विनश्यति, किमन्यन्न भ्रश्यति ।

—गद्यचिन्तामणिः

रिक्तस्य खाली हाथ वाले व्यक्ति का न वचनं न वचन जीवति रहता है, न आभिजात्यं न कुलीनता जागर्ति रहती है, न पौरुषं न पुरुषार्थ परिस्फुरति परिस्फुरित होता है, न विद्या न विद्या विद्योतते चमकती है, न शीलम् न शील उन्मीलति प्रकट होता है, न शेमुषी न बुद्धि समुन्मिषति स्फुरित होती है, न धार्मिकता न धार्मिकता सम्भाव्यते सम्भव समझी जाती है, न आभिरूप्यं न सुन्दरता निरूप्यते देखी जाती है, न प्रश्रयः न विनय प्रशस्यते सराहा जाता है, न कारुण्यं न दयालुता गण्यते कुछ समझी जाती है, पाकः पवित्रता पलायते भग जाती है, विवेकः विवेक विनश्यति नष्ट हो जाता है, अन्यत् और किं न क्या नहीं भ्रश्यति नष्ट हो जाता है ?

लोट् लकार

राजकुमार को मन्त्री श्रुतशील का उपदेश

कुमार ! मास्म मोहवान् भूः । मा स्म विस्मरः स्मयेन विनयम् । आवर्जय गुणान् । अभ्यस्य कलाः । त्यज जाड्यम् । मा स्म मुखरो भूः । भज माधुर्यम् । वर्जय वैपरीत्यम् । मा गाः स्त्रियाः श्रियो वा विश्वासम् । पाहि प्रजाः । मा च वृद्धिं प्राप्य गुणेषु द्वेषं कार्षीः ।

—नलचम्पूः, चतुर्थ उच्छ्वास

कुमार ! राजकुमार मोहवान् मोहयुक्त मा स्म भूः मत होना। स्मयेन अभिमान से विनयम् विनय को मा स्म विस्मरः मत भूलना। गुणान् गुणों का आवर्जय अर्जन करो। कलाः कलाओं का अभ्यस्य अभ्यास करो। जाड्यम् जडता को त्यज छोड़ो। मुखरः वाचाल मा स्म भूः मत होओ। माधुर्यम् मधुरता भज रक्खो। वैपरीत्यम् विपरीतता को (उल्टे कामों को) वर्जय छोड़ो। स्त्रियाः स्त्री के वा अथवा श्रियः लक्ष्मी के विश्वासं विश्वास में मा गाः मत पड़ो। प्रजाः प्रजा का पाहि पालन करो। वृद्धिं वृद्धि को प्राप्य पाकर गुणेषु गुणों में द्वेषं द्वेष मा कार्षीः मत करना।

महाराज नल के यात्राशिविर से प्रस्थान के समय भृत्यों को दिये गये आदेश

उत्तिष्ठत उत्तिष्ठत, आनयत गज-वाजि-वेगसरीः, संयोजयत शकटानि, वेष्टयत पटकुटीः, मुकुलयत मण्डपिकाः, संवृणुत काण्डपटान्, उन्मूलयत कीलकान्, उद्वहत वेगाद् वहनीयभाण्डम् , भारयत करभ-कलभान् , उत्क्षिपत क्षीणोक्षकान्, उत्तरत सरितम्, अपसरत पुरतः, कुरुत संचारसहं मार्गम्।

—नलचम्पू , षष्ठ उछ्वास

उत्तिष्ठत उत्तिष्ठत उठो उठो, गज-वाजि-वेगसरीः हाथी घोड़े और खच्चरों को आनयत ले आओ, शकटानि गाडियां को संयोजयत जोतो, पटकुटीः रावटियों को वेष्टयत लपेटो, मण्डपिकाः मण्डपों को मुकुलयत समेटो, काण्डपटान् कनातों को संवृणुत इकट्ठा करो (बिटोरो), कीलकान् कीलों को उन्मूलयत उखाड़ो, वहनीय-भाण्डान् ले चलने योग्य बर्तनों और सामग्रियों को वेगात् वेग से उद्वहत उठाओ, ढोओ, करभ-कलभान् ऊंटों और हाथियों के बच्चों को भारयत लादो,

क्षीणोक्षकान् कमजोर बैलों को उत्क्षिपत अलग करो, सरितम् नदी को उत्तरत पार करो, पुरतः आगे से अपसरत हटो, मार्गं मार्ग को संचारसहं चलने लायक कुरुत करो, बनाओ।

महाश्वेता का विलाप

प्रसीद, सकृदपि आलप, दर्शय भक्त-वत्सलताम्, ईषदपि विलोकय, पूरय मे मनोरथम्, आर्ताऽस्मि, भक्ताऽस्मि, अनुरक्ताऽस्मि, अनाथाऽस्मि, बालाऽस्मि, अगतिकाऽस्मि, दुःखिताऽस्मि, अनन्यशरणाऽस्मि, मदन-परिभूताऽस्मि, किमिति न करोषि दयाम्? कथय किम् अपराद्धम्? किं वा न अनुष्ठितं मया? कस्यां वा न आज्ञायाम् आदृतम्? कस्मिन् वा त्वदनुकूले न अभिरतम्? येन कुपितोऽसि?

—कादम्बरी पूर्वार्द्ध

प्रसीद प्रसन्न होवो, सकृदपि एकबार भी आलप बोलो, भक्त-वत्सलताम् भक्त वत्सलता दर्शय दिखलाओ, ईषदपि जरा भी (मेरी ओर) विलोकय देखो, मे मेरे मनोरथम् मनोरथ को पूरय पूरा करो, आर्ता आर्त अस्मि हूँ, भक्ता भक्त अस्मि हूँ, अनुरक्ता अस्मि अनुरक्त हूँ, अनाथा अस्मि अनाथ हूँ, बाला अस्मि बाला हूँ, अगतिका अस्मि गतिहीन हूँ, दुःखिता अस्मि दुःखी हूँ, अनन्यशरणा अस्मि केवल तुम्हारे शरण में हूँ, मदन-परिभूता अस्मि मदन से पीड़ित हूँ, किमिति क्यों दयां दया न करोषि नहीं करते? कथय कहो किम् अपराद्धम् क्या मुझसे अपराध हो गया? वा अथवा किं कौन सा काम मया मैंने न अनुष्ठितम् नहीं किया? वा अथवा कस्यां किस आज्ञायां आज्ञा में न आदृतम् मैंने आदर भाव नहीं दिखलाया? वा या कस्मिन् किस त्वदनुकूले तुम्हारे अनुकूल काम में न अभिरतम् मैंने मन नहीं लगाया? येन जिससे कुपितः असि कुपित हो?

महाराज हर्ष का सान्धिविग्रहिक द्वारा राजाओं के पास लिखवाया गया पत्र

लिख्यताम्।...सर्वेषां राज्ञां सज्जीक्रियन्तां कराः करदानाय शस्त्रग्रहणाय वा, गृह्यन्तां दिशः चामराणि वा, नमन्तु शिरांसि धनूंषि वा, कर्णपूरीक्रियन्ताम् आज्ञा मौर्व्यो वा, शेखरीभवन्तु पादरजांसि शिरस्त्राणि वा, घटन्ताम् अञ्जलयः करिघटाबन्धा वा, मुच्यन्ताम् भूमयः इषवो वा, समालम्ब्यन्तां वेत्रयष्टयः कुन्तयष्टयो वा, सुदृष्टः क्रियताम् आत्मा मच्चरणनखेषु कृपाणदर्पणेषु वा।

—हर्षचरितम्, उच्छ्वास ६

लिख्यताम् लिखिये, सर्वेषां सभी राज्ञां राजाओं के कराः हाथ करदानाय कर देने के लिये वा अथवा शस्त्रग्रहणाय शस्त्र ग्रहण करने लिये सज्जीक्रियन्ताम् तैयार हो जाँय, दिशः दिशायें गृह्यन्ताम् ग्रहण की जायँ वा अथवा चामराणि चँवर ग्रहण किये जायँ, शिरांसि शिर नमन्तु झुकें वा अथवा धनूँषि धनुष झुकें, आज्ञाः आज्ञायें कर्णपूरी-क्रियन्ताम् कनफूल बनायी जायँ वा अथवा मौर्व्यः धनुष की डोरियाँ, पादरजांसि चरण की धूल शेखरीभवन्तु शिरों पर चढ़ें वा अथवा शिरस्त्राणि टोप, अञ्जलयः अञ्जलियाँ घटन्ताम् बाँधी जाय वा अथवा करिघटाबन्धाः हाथियों के समूह की पङ्क्तियाँ, भूमयः जमीन मुच्यन्ताम् छोड़ी जायँ वा अथवा इषवः तीर, वेत्रयष्टयः वेतों की छड़ियाँ समा-लम्ब्यन्ताम् हाथ में ली जायँ वा अथवा कुन्तयष्टयः भाले, आत्मा अपना स्वरूप मच्चरणनखेषु मेरे चरणों के नखों में सुदृष्टः क्रियताम् देखा जाय वा या कृपाणदर्पणेषु तलवार रूपी दर्पणों में।

लिङ् लकार

अधिक अन्न उत्पादन का महत्त्व

अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्। अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्। अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्। कंचन वसतौ न प्रत्याचक्षीत। तद् व्रतम्। तस्माद् यया कया च विधया बहु अन्नं प्राप्नुयात्।

—तैत्तिरीय उपनिषद्, वल्ली ३. अनु० १०

अन्नं न निन्द्यात् अन्न की निन्दा न करे। तद् वह व्रतं व्रत है। अन्नं न परिचक्षीत अन्नका तिरस्कार न करे। तद् व्रतम् वह व्रत है। अन्नं अन्न बहु कुर्वीत बहुत पैदाकरें, बढाये। तद् व्रतम् वह व्रत है। वसतौ (अपने) घर पर कंचन किसी (भी अतिथि) को न प्रत्याचक्षीत प्रतिकूल वचन न बोले (स्वागत करने से इन्कार न करें)। तद् व्रतम् वह व्रत है। तस्मात् इसलिये यया कया च विधया जिस किसी उपाय से बहु बहुत सा अन्नं अन्न प्राप्नुयात् प्राप्त करे।

अद्वैत भाव की महत्ता

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं रसयते, तदितर इतरम् अभिवदति, तदितर इतरं शृणोति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं स्पृशति, तदितर इतरं विजानाति। यत्र तु अस्य सर्वमात्मैवाऽभूत् तत् केन कं पश्येत्, केन कं जिघ्रेत्, केन कं रसयेत्, केन कम् अभिवदेत्, केन कं शृणुयात्, केन कं मन्वीत, केन कं स्पृशेत्, केन कं विजानीयात्। येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्?

—बृहदारण्यकोपनिषद्–४–६

यत्र हि जहाँ पर द्वैतम् इव द्वैत के समान भावना भवति होती है तत् वहाँ इतरः दूसरा इतरं दूसरे को पश्यति देखता है, इतरः दूसरा

इतरं दूसरे को जिघ्रति सूँघता है, इतरः दूसरा इतरं दूसरे को रसयते चखता है, इतरः दूसरा इतरं दूसरे से अभिवदति बोलता है, इतरः दूसरा इतरं दूसरे को शृणोति सुनता है, इतरः दूसरा इतरं दूसरे को मनुते मानता है, इतरः दूसरा इतरं दूसरे को स्पृशति छूता है, इतरः दूसरा इतरं दूसरे को विजानाति जानता है। तु परन्तु यत्र जहाँ सर्वं सब कुछ अस्य इसकी आत्मा एव आत्मा ही अभूत् हो गया तत् तब केन किससे कं किसको पश्येत् देखे. केन कं किससे किसको जिघ्रेत् सूँघे, केन कं किससे किसको रसयेत् चखे, केन किसके द्वारा कं किससे अभिवदेत् बोले, केन किससे कं किस की शृणुयात् सुने, केन किससे कं किसको मन्वीत माने, केन किससे कं किसको स्पृशेत् छूवे, केन किससे कं किस को विजानीयात् जाने ? येन जिससे इदं यह सर्वं सब विजानाति जानता है तं उसे केन किससे विजानीयात् जाने ?

वर्जनीय कर्म एवं स्वभाव

न अनृतं ब्रूयात्। न अन्यस्वम् आददीत। न अन्यस्त्रियम् अभिलषेत् न अन्यश्रियम्। न वैरं रोचयेत्। न कुर्यात् पापम्। न पापेऽपि पापी स्यात्। न अन्यरहस्यम् आगमयेत्। न अधार्मिकैः सह आसीत। न उच्चैः हसेत्। न अनावृतमुखो जृम्भां, क्षवथुं, हास्यं वा प्रवर्तयेत्। न नासिकां कुष्णीयात्। न दन्तान् विघट्टयेत्। न विगुणम् अङ्गैः चेष्टेत। न पापवृत्तान् स्त्री-मित्र-भृत्यान् भजेत। न उत्तमैः विरुद्धयेत। न अवरान् उपासीत। न जिह्मं रोचयेत्। न अनार्यम् आश्रयेत। न भयम् उत्पादयेत्।

—चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ. ८.

अनृतं झूठ न ब्रूयात् न बोले। अन्यस्वम् दूसरे का धन न आददीत न ले। अन्यस्त्रिय दूसरें की स्त्री को (तथा) अन्यश्रियं दूसरे के धन को न अभिलषेत् न चाहे। वैरं वैर न रोचयेत् न

पसन्द करे। पापं पाप न कुर्यात् न करे। पापे अपि पापी के साथ भी पापी पापी न स्यात् न हो। अन्यरहस्यं दूसरे की गुप्त बात को न आगमयेत् जानने का प्रयत्न न करे। अधार्मिकैः सह अधार्मिक व्यक्तियों के साथ न आसीत न बैठे। उच्चैः जोर से न हसत् न हँसे। अनावृतमुखः बिना मुँह ढके जृम्भा जँभाई, क्षवथुं छींक वा अथवा हास्यं हँसी न प्रवर्तयेत् न करे। नासिकां नाक न कुष्णीयात् न निखोरे। दन्तान् दाँतों को न विघट्टयेत् न बजावे। अङ्गैः अङ्गों से विगुणं निरर्थक न चेष्टेत चेष्टायें न करे। पापवृत्तान् पापाचारी स्त्री-मित्र-भृत्यान् स्त्री, मित्र और भृत्यों का न भजेत् साथ न करे। उत्तमैः उत्तम पुरुषों के साथ न विरुद्धयेत् विरोध न करे। अवरान् नीच पुरुषों के न उपासीत पास न बैठे। जिह्मं छल कपट आदि करना न रोचयेत् न पसन्द करे। अनार्यं अनार्य पुरुष का न आश्रयेत् आश्रय न ले। भयं भय न उत्पादयेत् पैदा न करे।

वर्जनीय कर्म एवं स्वभाव

न अति समयं जह्यात्। न नियमं भिन्द्यात्। न नक्तं अदेशे चरेत्। न गुह्यं विवृणुयात्। न कञ्चित् अवजानीयात्। न अहम्मानी स्यात्। न अतिब्रूयात्। न कार्यकालम् अतिपातयेत्। न अपरीक्षितम् अभिनिविशेत्। न इन्द्रियवशगः स्यात्। न चञ्चलं मनः अनुभ्रामयेत्। न बुद्धीन्द्रियाणाम् अतिभारम् आदध्यात्। न च अतिदीर्घसूत्री स्यात्।

—चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० ८.

समयं समय का न अतिजह्यात् अतिक्रमण न करे। नियमं नियम को न भिन्द्यात् न तोड़े। नक्तं रात में अदेशे अनुचित स्थान पर न चरेत् न जावे। गुह्यं किसी की गुप्त बात को न विवृणुयात् न खोले। कञ्चित् किसी को न अवजानीयात् अपमानित न करे।

अहम्मानी अभिमानी न स्यात् न हो। न अतिब्रूयात् बहुत न बोले। कार्यकालं काम करने के समय को न अतिपातयेत् बेकार न बितावे। अपरीक्षितं बिना परीक्षा किये न अभिनिविशेत् किसी बात का आग्रह न करे। इन्द्रियवशगः इन्द्रियों के वशीभूत न स्यात् न होवे। मनः मन को चञ्चलं चञ्चल कर न अनुभ्रामयेत् इधर उधर न घुमावे। बुद्धीन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियों पर अतिभारं बहुत भार न आदध्यात् न दे। अतिदीर्घसूत्री बहुत दीर्घसूत्री न स्यात् न हो।

लङ् तथा लिट् लकार

संक्षिप्त रामायण–कथा

खट्वाङ्गाद् दीर्घबाहुः पुत्रोऽभवत्। ततो रघुरभवत्। तस्मादपि अजः। अजाद् दशरथः। तस्यापि भगवान् अब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थम् आत्मांशेन राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-रूपेण चतुर्द्धा पुत्रत्वम् अयासीत्।

रामोऽपि बाल एव विश्वामित्र-याग-रक्षणाय गच्छन् ताटकां जघान। यज्ञे च मारीचम् इषुवाताहतं समुद्रे चिक्षेप। सुबाहु-प्रमुखांश्च क्षयम् अनयत्। दर्शनमात्रेण अहल्याम् अपापां चकार। जनकगृहे च माहेश्वरं चापम् अनायासेन बभञ्ज। सीतामयोनिजां जनकराजतनयां वीर्यशुल्कां लेभे। सकल-क्षत्रिय-क्षयकारिणम् अशेष-हैहयकुल-धूमकेतुभूतं च परशुरामम् अपास्त-वीर्य-बलावलेपं चकार।

पितृवचनाच्च अगणितराज्याभिलाषो भ्रातृ-भार्या-समेतो वनं प्रविवेश। विराध-खर-दूषणादीन् कबन्ध-वालिनौ च निजघान। बद्ध्वा च अम्भोनिधिम्, अशेषराक्षसकुलक्षयं कृत्वा दशाननापहृतां भार्यां...जनकराजकन्याम् अयोध्याम् आनिन्ये।

विष्णुपुराण, ४, ४, ८३–९७

खट्वाङ्गात् खट्वाङ्ग से दीर्घबाहुः दीर्घबाहु पुत्रः पुत्र अभवत् हुए। ततः उनसे रघुः रघु अभवत् हुए। तस्मात् अपि उनसे भी अजः अज हुए। अजात् अज से दशरथः दशरथ हुए। तस्य अपि उनके भी भगवान् अब्जनाभः भगवान् विष्णु जगतः जगत की स्थित्यर्थं रक्षा के लिये आत्मांशेन अपने अंश से राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-रूपेण राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में चतुर्धा चार प्रकार से पुत्रत्वं पुत्रत्व को अयासीत् प्राप्त हुए, पुत्र रूप से उत्पन्न हुए।

रामः अपि राम ने भी बाल एव बालक होते हुए ही विश्वामित्र-याग-रक्षणाय विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिये ताटकां ताडका को जघान मारा। च और यज्ञे यज्ञ में इषुवाताहतं वाण के वायु के वेग से आहत मारीचं मारीच को समुद्रे समुद्र में चिक्षेप फेंक दिया। च और सुबाहु-प्रमुखान् सुबाहु आदि राक्षसों को क्षयं विनाश को अनयत् पहुँचाया। दर्शनमात्रेण दर्शन मात्र से अहल्यां अहल्या को अपापां निष्पाप चकार किया। च और जनकगृहे जनक के घर में माहेश्वरं शिवजी के चापं धनुष को अनायासेन विना आयास के बभञ्ज तोड़ दिया। अयोनिजां अयोनिज (तथा) वीर्यशुल्कां बल का शुल्क देकर प्राप्त होने वाली जनकराज-तनयां जनकराज की पुत्री सीतां सीता को लेभे प्राप्त किया। सकलक्षत्रिय-क्षयकारिणं सकल क्षत्रियों का क्षय करने वाले च तथा अशेष-हैहयकुल-धूमकेतुं समस्त हैहय-कुल के लिये धूमकेतु के समान (भयंकर) परशुरामं परशुराम को अपास्त-वीर्यबलापलेपं वीर्य एवं बल के अभिमान से रहित चकार कर दिया।

च और पितृवचनात् पिता के वचन से अगणित-राज्याभिलाषः राज्याभिलाषा की चिन्ता न कर भ्रातृ-भार्या-समेतः भाई और स्त्री के साथ वनं वन में प्रविवेश प्रवेश किया। विराध-खर-दूषणादीन् विराध, खर एवं दूषण आदि को च तथा कवन्ध-बालिनौ कबन्ध और बालि को निजघान मारा। च और अम्भोनिधिं समुद्र को बद्ध्वा बाँध कर

(तथा) अशेष-राक्षसकुल-क्षयं समस्त राक्षसों के कुल का क्षय कृत्वा कर दशाननाहृतां रावण द्वारा अपहृत जनकराज-कन्यां जनकराज की कन्या भार्यां अपनी स्त्री सीता को अयोध्यां अयोध्या में आनिन्ये ले आये।

राजकुमार चन्द्रापीड़ के गुणों के साथ शारीरिक विकाश का वर्णन

लक्ष्म्या सह वितस्तार वक्षःस्थलम्। बन्धुजन-मनोरथैः सह अपूर्यंत ऊरुदण्डद्वयम्। अरिजनेन सह तनिमानम् अभजत मध्यभागः। त्यागेन सह प्रथिमानम् आततान नितम्बभागः। प्रतापेन सह आरुरोह रोमराजिः। अहित-कलत्राऽलक-लताभिः सह प्रालम्ब-ताम् उपययौ भुजयुगलम्। चरितेन सह धवलताम् अभजत लोचन-युगलम्। आज्ञया सह गुरुर्बभूव शिखरदेशः। स्वरेण सह गम्भीर-ताम् आजगाम हृदयम्।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

लक्ष्म्या सह लक्ष्मी के साथ वक्षःस्थलं वक्षस्थल वितस्तार विस्तृत हो गया। बन्धुजन-मनोरथैः सह बन्धुजनों के मनोरथों के साथ ऊरुदण्ड-द्वयं दोनों ऊरुदण्ड अपूर्यंत भर गये। अरिजनेन सह शत्रुओं के साथ मध्यभागः कमर ने तनिमानं पतलापन अभजत ग्रहण किया। त्यागेन सह त्याग के साथ नितम्बभागः नितम्बभाग ने प्रथिमानं विशालता आततान धारण की। प्रतापेन सह प्रताप के साथ रोमराजिः रोम-समूह आरुरोह ऊपर आ निकला। अहित-कलत्राऽलक-लताभिः सह शत्रुओं की स्त्रियों के केशों के साथ भुजयुगलं दोनों बाहु प्रालम्बतां लम्बाई को उपययौ प्राप्त हुए। चरितेन सह चरित्र के साथ लोचन-युगलं दोनों आंखों ने धवलतां स्वच्छता को अभजत धारण किया। आज्ञया सह आज्ञा के साथ शिखरदेशः मस्तक गुरुः भारी बभूव हो

गया। स्वरेण सह स्वर के साथ हृदयं हृदय गम्भीरतां गम्भीरता को आजगाम प्राप्त हुआ।

श्री कण्ठ नामक जनपद का वर्णन

यत्र...अक्षीयन्त कुदृष्टयः।...न अदृश्यन्त दुरितानि।... व्यदीर्यत अधर्मः। ननाश वर्णशङ्करः। ...अपलायत कलिः।... व्यदीर्यन्त विपदः।...प्राद्रवन् उपद्रवाः। व्यलीयन्त व्याधयः।...न उपासर्पन् अपमृत्यवः।...अपजग्मुः ईतयः।...न प्राभवत् दुर्दैवम्।

—हर्षचरितम्, उच्छ्वास ३

यत्र जहाँ कुदृष्टयः कुदृष्टियाँ अक्षीयन्त नष्ट हो गई थीं, दुरितानि पाप न अदृश्यन्त नहीं दीख पड़ते थे, अधर्मः अधर्म व्यदीर्यत विदीर्ण हो गया था, वर्णसङ्करः वर्ण संकरता ननाश नष्ट हो गई थी, कलिः कलह अपलायत भग गया था, विपदः विपत्तियाँ व्यदीर्यन्त विनष्ट हो गई थीं, उपद्रवाः उपद्रव प्राद्रवन् दूर हट गये थे, व्याधयः बीमारियाँ व्यलीयन्त विलीन हो गई थीं, अपमृत्यवः अपमृत्युयें न उपासर्पन् पास नहीं आती थीं, ईतयः ईतियाँ अपजग्मुः दूर चली गई थीं (तथा) दुर्दैवं दुर्दैववश कोई दुर्घटना न प्राभवत् नहीं हो सकती थी।

लृट्-लकार

एक व्यक्ति द्वारा अपनी सफाई

भद्रे! मुधैव माम् उपालभसे। यदा गम्भीरं निरीक्षिष्यसे, परीक्षिष्यसे च तदा स्पष्टं समीक्षिष्यसे यत् नात्र अणुरपि दोषो मामकीनः।

शिवराजविजय, नवम निश्वास

भद्रे! मुधा एव व्यर्थ ही माम् मुझको उपालभसे उलाहना देती हो। यदा जब गम्भीरं गम्भीरतापूर्वक निरीक्षिष्यसे निरीक्षण करोगी

च तथा परीक्षिष्यसे परीक्षा करोगी तदा तव स्पष्टं साफ साफ समीक्षिष्यसे देखोगी यत् कि अत्र इस विषय में मामकीनः मेरा अणुः अपि जरा भी दोषः न दोष नहीं है।

केचिद्देवमाहुः। वाता न वास्यन्ति। केचिद्देवमाहुः। अग्निर्न ज्वलिष्यति। केचिदाहुः। देवो न वर्षिष्यति। केचिदाहुः। नद्यो न वहिष्यन्ति। केचिदाहुः। शस्यानि न प्रजनिष्यन्ति। केचिदाहुः। पक्षिण आकाशे न क्रमिष्यन्ति। केचिदाहुः। गुर्विण्यो न आरोग्येण प्रसविष्यन्ति।

ललित विस्तर २५

केचित् कुछ लोग एवम् इस प्रकार आहुः कहने लगे। वाताः हवायें न वास्यन्ति नहीं वहेंगी। केचित् एवम् आहुः कुछ लोग इस प्रकार कहने लगे। अग्निः आग न ज्वलिष्यति नहीं जलेगी। केचित् कुछ लोग आहुः बोले। देवः इन्द्र न वर्षिष्यति नहीं वरसेगें। केचित् आहुः कुछ लोग बोले। नद्यः नदियाँ न वहिष्यन्ति नहीं वहेंगी। केचित् आहुः कुछ लोगों ने कहा। शस्यानि अन्न न प्रजनिष्यन्ति नहीं उत्पन्न होंगे। केचित् आहुः कुछ ने कहा। पक्षिणः पक्षी आकाश में न क्रमिष्यन्ति नहीं उड़ेंगे। केचित् आहुः कुछ लोग बोले। गुर्विण्यः गर्भिणी स्त्रियाँ आरोग्येण सुख से न प्रसविष्यन्ति प्रसव नहीं करेंगी।

कादम्बरी के सम्बन्ध में केयूरक से चन्द्रापीड़ की वार्ता

केयूरक। किं कलयसि, यावत् वयं परापतामः तावत् प्राणान् सन्धारयिष्यति देवी कादम्बरी, पारयिष्यति वा तां विनोदयितुं मदलेखा, गमिष्यति वा पुनः तत्समाश्वासनाय महाश्वेता, मत्परिचयोद्वेजिता प्रतिपत्स्यते वा शरीर-स्थितये तयोरभ्यर्थनाम्, द्रक्ष्यामि च पुनस्तस्याः स्मेर-सृक्कोपान्तं...मुखमिति।

—कादम्बरी उत्तरार्द्ध

केयूरक ! अरे केयूरक ! किं कलयसि ? क्या समझते हो (क्या तुम्हारा ख्याल है) ? यावत् जबतक वयं हम परापताम: लौटते हैं तावत् तबतक देवी कादम्बरी देवी कादम्बरी (क्या) प्राणान् प्राणों को सन्धारयिष्यति धारण करेगी ? वा अथवा मदलेखा मदलेखा (क्या) तां उसे विनोदयितुं पारयिष्यति बहला सकेगी ? वा अथवा महाश्वेता महाश्वेता पुन: फिर तत्समाश्वासनाय उसको आश्वासन देने के लिये गमिष्यति जायगी ? वा अथवा (क्या) मत्परिचयोद्वेजिता मेरे परिचयसे उद्विग्न हुई (कादम्बरी) शरीर-स्थितये शरीर को स्वस्थ रखने के लिये तयो: उनकी अभ्यर्थनाम् प्रार्थना को प्रतिपत्स्यते स्वीकार करेगी ? वा अथवा (क्या) मैं पुन: फिर तस्या: उसके स्मर-सृक्कोपान्तम् मुसकान से युक्त ओठों वाले मुखं मुख को द्रक्ष्यामि देखूँगा ?

माता का अहेतुक पुत्र-वात्सल्य

पुत्रो युवा भूत्वा पालयिष्यति पीडयिष्यति वा ? सेविष्यते उपेक्षिष्यते वा ? प्रमोदयिष्यति सन्तापयिष्यति वा ? स्तोष्यति निन्दिष्यति वा ? वशंवद: भविष्यति अवशंवदो वा इति कदापि न चिन्तयति। पुत्रो यौवने यथा तथा वा भवतु परं करुणामयी माता तु तस्य लालनं करोत्येव।

—गद्य मुक्तावली

(माता) पुत्र: पुत्र युवा भूत्वा जवान होकर पालयिष्यति पालन करेगा वा पीडयिष्यति अथवा पीडा देगा ? सेविष्यते सेवा करेगा वा उपेक्षिष्यते अथवा उपेक्षा करेगा ? प्रमोदयिष्यति प्रसन्न रखेगा वा सन्तापयिष्यति अथवा सन्ताप देगा ? स्तोष्यति प्रशंसा करेगा वा निन्दिष्यति अथवा निन्दा करेगा ? वशंवद: आज्ञाकारी भविष्यति होगा वा अवशंवद: अथवा अवशंवद इति ऐसा कदापि कभी भी न चिन्तयति नहीं सोचती है। पुत्र: पुत्र यौवने जवानी में यथा तथा

वा जैसा तैसा भी भवतु हो परं परन्तु करुणामयी स्नेहमयी माता तु माता तो तस्य उसका लालनं लालन करोति एव करती ही है।

लङ् लकार

बन्धुसुन्दरी के प्रति तरङ्गलेखा की उक्ति

दुर्विनीते! क्व आगता त्वमिह? किं तव आगमनकार्यम् अत्रोपजातम्? कस्तव अस्मिन् आस्ते? केन ते दुर्मतिरियं दत्ता?

यदि तव आपतन्त्याः पथि कथञ्चित् क्रूरसत्वाद्युपद्रव-समुत्थः कोऽपि अनर्थो महान् आपतिष्यत् तदा क्वाऽहम् अगमिष्यम्, किम् अभविष्यम्, केषु तीर्थेषु पापोपलिप्तम् आत्मानम् अक्षालयिष्यम्?

—तिलकमञ्जरी

दुर्विनीते! दुष्टे! त्वम् तुम इह यहाँ क्व कहाँ आगता आ गई? तव तुम्हारे अत्र यहाँ आगमनकार्यं आने का काम किं क्या उपजातं आ पड़ा? अस्मिन् यहाँ तव तुम्हारा कः कौन आस्ते है? ते तुम्हे केन किसने एवं ऐसी दुर्मतिः दुर्मति दत्ता दी? यदि अगर आपतन्त्याः आती हुई तव तुम्हारे (ऊपर) पथि रास्ते में कथञ्चित् किसी प्रकार कोऽपि कोई क्रूर-सत्वाद्युपद्रव-समुत्थः क्रूर जन्तुओं के उपद्रव से उत्पन्न महान् भारी अनर्थः अनर्थ आपतिष्यत् आ पड़ता तदा तब अहं क्व कहाँ अगमिष्यम् जाती. किम् क्या अभविष्यम् होती, केषु किन तीर्थेषु तीर्थों में पापोपलिप्तम् पाप से लिपे हुए आत्मानं अपने को अक्षालयिष्यम् धोती?



४—कृदन्त प्रकरणम्

तव्य, अनीयर्*

चन्द्रापीड़ का पत्रलेखा को उपदेश

पत्रलेखे ! त्वयापि यान्त्या अध्वनि न मद्विरह-पीड़ा भावनीया, न शरीर-संस्कारे अनादरः करणीयः, न आहारवेला अतिक्रमणीया, न येन केनचित् अज्ञातेन पथा यातव्यम्, न यत्र तत्रैव अनिरूप्य अवस्थातव्यम् उषितव्यं वा, न यस्य कस्यचित् अपरिज्ञायमानस्य अन्तरं दातव्यम्, सर्वदा शरीरे अप्रमादिन्या भाव्यम्।

—कादम्बरी उत्तरार्द्ध

पत्रलेखे ! पत्रलेखा ! त्वया अपि तुम भी अध्वनि मार्ग में यान्त्या जाती हुई मद्विरह-पीड़ा मेरे विरह से पीड़ा का न भावनीया अनुभव न करना, शरीरसंस्कारे शरीर के संस्कार में अनादरः अनादर न करणीयः न करना, आहारवेला भोजन करने के समय का न अतिक्रमणीया अतिक्रमण न करना, येन केनचित् जिस किसी- अज्ञातेन अज्ञात पथा मार्ग से न यातव्यम् नहीं जाना, यत्रतत्रैव जहाँ कभी भी अनिरूप्य बिना अच्छी तरह देखे न अवस्थातव्यम् नहीं ठहरना, उषितव्यं वा अथवा निवास करना, यस्य कस्यचित् जिस किसी अपरिज्ञायमानस्य

*तव्य एवं अनीयर् प्रत्यय केवल कर्मवाच्य एवं भाववाच्य में होते हैं। इसी लिये इनके लगाने पर कर्त्ता में तृतीया तथा कर्म में प्रथमा विभक्ति हो जाती है। नीचे के सभी गद्यांश कर्म एवं भाव में ही हैं पर उनका हिन्दी अर्थ कर्तृवाच्य के अनुसार ही किया गया है। पाठक इस पर ध्यान देगें।

बिना जान-पहचान के आदमी को अन्तरं भेद न दातव्यम् नहीं देना, शरीरे शरीर के विषय में सर्वदा हमेशा अप्रमादिन्या अप्रमादिनी भाव्यम् होना।

वन में सीता का परित्याग कर लौटते हुए लक्ष्मण के प्रति सीता की आदर्श उक्ति

वत्स लक्ष्मण, प्रणमितव्या त्वया मम वचनात् राघवकुल-राजधानी अयोध्या। शुश्रूषितव्यः प्रतिमागतो महाराजः। साधयितव्या श्वश्रूणाम् आज्ञप्तिः। समाश्वासयितव्याः प्रियंवदाः मम प्रिय सख्यः, स्मर्तव्या सार्वकालं मन्दभागिनी।

—कुन्दमाला १

वत्स लक्ष्मण! त्वया तुम मम मेरे वचनात् वचन से राघवकुल-राजधानी रघुकुल की राजधानी मोटा अयोध्या को प्रणमितव्या प्रणाम करना, प्रतिमागतः चित्र में विराजमान महाराजः महाराज की शुश्रूषितव्यः सेवा करना, श्वश्रूणाम् सासों की आज्ञप्तिः आज्ञाओं को साधयितव्या पूरा करना, प्रियवंदाः प्रिय वचन बोलने वालीं मम मेरी प्रियसख्यः प्रिय सखियों को समाश्वासयितव्याः आश्वासन देना, तथा (मुझ) मन्दभागिनी मन्दभागिनी को सर्वकालं सदा स्मर्तव्या स्मरण रखना।

रत्नसार श्रेष्ठी का मृत्यु के समय अपने पुत्र को उपदेश

कियत्कालेन रुजार्तो मुमूर्षुः स श्रेष्ठी सुतं साञ्जसमुक्तवान्। वत्स! वयं मरणाभिमुखाः, त्वं तु नवयौवनः। यौवने च विषय-विषम-विष-घूर्ण-दृष्टयो न किञ्चित् पश्यन्ति नराः। सद्गुरूपदेशा-मृत-सेसिच्यमानात्मानस्तु पुरुषा न बाध्यन्ते तेन विशेषण। ततः सङ्गृहाण सदुपदेशामृतम्। स चायं सदुपदेश :—

'अज्ञातेषु न विश्वसनीयम्, नारीषु मन्त्रो न प्रकटनीयः, मूलानुपालनेन धनं व्ययनीयम्, विरोधः प्रोन्मूलनीयः, महाजनो रञ्जनीयः, गुरवो न खेदनीयाः, आवश्यके कर्मणि न प्रमादः करणीयः, सूक्तमुक्तं रिपोरपि न दूषणीयम्, वेश्याः पराङ्गनाश्च वर्जनीयाः, धनं भार्यापुत्राधीनं न विधानीयम्, कष्टेषु पुरुषव्रतं न त्यजनीयम्, अदानतपस्कं दिनं नातिवाहनीयम्'।

——प्रियङ्करनृप कथा

कियत्कालेन कुछ समय से रुजार्तः रोग से पीडित, मुमूर्षुः मरने की अवस्था में प्राप्त स वुस मोटा सेठ ने सुतं पुत्र से साञ्जसं स्नेह पूर्वक उक्तवान् कहा वत्स! पुत्र! वयं हम मरणाऽभिमुखाः मरने ही वाले हैं (पर) त्वं तुम तु तो नवयौवनः नौजवान हो। यौवने जवानी में नराः मनुष्य विषम-विषय-विष-घूर्णमान-दृष्टयः विषय रूपी विषम विष से घूर्णमान दृष्टि होकर किञ्चित् कुछ न पश्यन्ति नहीं देखते हैं। तु परन्तु गुरूपदेशामृत-सेसिच्यमानात्मानः गुरुओं के उपदेश रूपी अमृत से जिनकी आत्मा बराबर सिक्त होती रहती है (ऐसे) पुरुषाः पुरुष तेन उस विषेण विषसे न बाध्यन्ते पीडित नहीं होते है। ततः इस लिये सदुतदेशामृतम् सदुपदेशरूपी अमृत का संगृहाण संग्रहण करो। च और स वह अयं यह उपदेशः उपदेश है—

अज्ञातेषु अज्ञात पुरुषों का न विश्वसनीयम् विश्वास नहीं करना चाहिये। नारीषु स्त्रियों के समीप मन्त्रः गुप्त मन्त्र न प्रकटनीयः प्रगट नहीं करना चाहिये। मूलाऽनुपालनेन मूल का पालन करते हुए, पूंजी को बचाते हुए धनं धन व्ययनीयम् खर्च करना चाहिये। विरोधः विरोध प्रोन्मूलनीयः समूल नष्ट कर देना चाहिये। महाजनः बड़े लोगों को रञ्जनीयः प्रसन्न रखना चाहिये। गुरवः गुरुजनोंको न खेदनीयाः कष्ट नहीं देना चाहिये। अवश्यके आवश्यक कर्मणि काम मे प्रमादः असावधानी न करणीयः नहीं करनी चाहिये। रिपोः

शत्रु के अपि भी उक्तं कहे हुए सूक्तं अच्छे वचन को न दूषणीयम् बुरा नहीं मानना चाहिये। वेश्याः वेश्यायें च तथा पराङ्गनाः दूसरों की स्त्रियों को वर्जनीयाः परित्याग कर देना चाहिये। धनं धनं भार्यापुत्राधीनं स्त्री और पुत्र के अधीन न विधानीयम् नहीं करना चाहिये। कष्टेषु कष्ट की अवस्थाओं में पुरुषव्रतं सत्पुरुषों का व्रत न त्यजनीयम् नहीं छोड़ना चाहिये। दिनं दिन अदान-तपस्कं बिना दान और तप के न अतिवाहनीयम् नहीं बिताना चाहिये।

शतृ, शानच्

चन्द्रापीड की विजययात्रा में धूल के उड़ने का वर्णन

कुपित इव मुञ्चन् क्षमाम्, आरब्ध परिहास इव रुन्धन् नयनानि, तृषित इव पिबन् करि-कर-शीकर-जलानि, पक्षवान् इव उत्पतन् गगनतलम्, अलिनिवह इव चुम्बन् मदलेखाम्, मृगपतिरिव रचयन् करि-कुम्भस्थलीषु पदम्, उपात्तविजय इव गृह्णन् पताकाः, जरागम इव पाण्डरीकुर्वन् शिरांसि, मुद्रयन् इव·· दृष्टिम्, आजिघ्रन् इव·· कर्णोत्पलानि, रेणुः उत्पपात।

—कादम्बरी पूर्वार्द्ध

कुपित इव कुपित व्यक्ति के समान क्षमाम् क्षमा को मुञ्चन् छोड़ता हुआ, आरब्ध-परिहास इव परिहास कर रहे व्यक्ति के समान नयनानि आँखों को रुन्धन् मूँदता हुआ, तृषित इव प्यासे के समान करि-कर-शीकर-जलानि हाथियों के सूँड़ के जल बिन्दुओं को पिबन् पीता हुआ, पक्षवान् इव पाँख वाले के समान गगनतलम् आकाश में उत्पतन् उड़ता हुआ, अलिनिवह इव भ्रमरों के झुण्ड के समान (हाथियों की) मदलेखा मदरेखाओं को चुम्बन् चूमता हुआ, मृगपतिः इव सिंह के समान करि-कुम्भस्थलीषु हाथियों के कुम्भस्थलों पर पदं पैर रचयन्

रखता हुआ उपात्तविजय इव विजयी के समान पताकाः पताओं को गृह्णन् ग्रहण करता हुआ, जरागम इव बुढ़ापे के आगमन के समान शिरांसि शिरों को पाण्डरीकुर्वन् सफेद करता हुआ, दृष्टिं दृष्टि को मुद्रयन् इव मानो मूँदता हुआ, कर्णोत्पलानि कान में पहने हुए कमल के फूलों को आजिघ्रन् इव मानो सूँघता हुआ रेणुः रेणु उत्पपात उड़ा।

वैशम्पायन के विरह से चन्द्रापीड़ की उद्विग्नता

उत्रस्त इव हरिणशावकः, यूथ-परिभ्रंश-विलोल इव करि-कलभः, धेनु विरहात् उत्कर्ण इव तर्णकः, न किञ्चित् पश्यन्, न वदन्, न किञ्चित् आलपन्, न किञ्चित् आकर्णयन्, न किञ्चित् निरूपयन्, न क्वचित् तिष्ठन्, न कञ्चित् आह्वयन्, क्व आगतः अस्मि, किमर्थम् आगतः अस्मि, क्व चलितः अस्मि, क्व गच्छामि, किं पश्यामि, किम् आरब्धं मया, का दिग् गन्तव्या मया, किं वा करोमि इति सर्वमेव अचिन्तयमानः अन्ध इव, वधिर इव, मूक इव, जड़ इव, आविष्ट व कटकमध्यदेशं यावत् तादृशेन इव वेगेन अवहत्।

—कादम्बरी उत्तरार्द्ध

उत्रस्तः डरे हुए हरिणशावकः इव हरिण के बच्चे के समान, यूथ-परिभ्रंश-विलोलः झुण्ड से अलग हो जाने के कारण भटकते हुए करिकलभः इव हाथी के बच्चे के समान, धेनु विरहात् गाय के विरह से उत्कर्णः ऊपर कान उठाये हुए तर्णकः इव बछड़े के समान न किञ्चित् न कुछ पश्यन् देखता हुआ, न किञ्चित् न कुछ वदन् बोलता हुआ, न किञ्चित् न कुछ आलपन् बातें करता हुआ, न किञ्चित् न कुछ आकर्णयन् सुनता हुआ, न किञ्चित् न कुछ निरूपयन् कहता हुआ, न क्वचित् न कहीं तिष्ठन् ठहरता हुआ, न कञ्चित् न किसी को आह्वयन् बुलाता हुआ, क्व कहाँ आगतः अस्मि आया हूँ, किमर्थम्

किस लिये आगतः अस्मि आया हूँ, क कहाँ चलितः अस्मि चला हूँ, क कहाँ गच्छामि जाता हूँ, किं क्या पश्यामि देखता हूँ, किं क्या मया मैंने आरब्धम् आरम्भ किया, का दिग् किस दिशा में मया मुझे गन्तव्यम् जाना चाहिये, किं वा करोमि और क्या करूँ इति यह सर्वमेव सब कुछ अचिन्तयमानः न सोचता हुआ, अन्ध इव अन्धे के समान, बधिर इव बहरे के समान, मूकः इव गूँगे के समान, जडः इव जड़ के समान, आविष्टः इव आवेश युक्त के समान कटक-मध्यदेशं कटक के मध्यदेश यावत् तक तादृशेन इव उस प्रकार के ही वेगेन वेग से अवहत् गया ।

चन्द्रापीडा की विजय यात्रा का वर्णन

प्रत्यूषसि च उत्थाय......सेनासमुदायेन जर्जरयन् वसुन्धराम्, आकम्पयन् गिरीन्, उत्सिञ्चन् सरितः, रिक्तीकुर्वन् सरांसि, चूर्णयन् काननानि, समीकुर्वन् विषमाणि, दलयन् दुर्गाणि, पूरयन् निम्नानि, निम्नयन् स्थलानि प्रातिष्ठत ।

शनैः शनैश्च स्वेच्छया परिभ्रमन्, नमयन् उन्नतान्, आश्वासयन् भीतान्, रक्षन् शरणागतान्, उन्मूलयन् विटपकान्, उत्सादयन् कण्टकान्, अभिषिञ्चन् स्थान स्थानेषु राजपुत्रान्, समर्जयन रत्नानि, प्रतीच्छन् उपायनानि, गृह्णन् करान्, आदिशन् देशव्यवस्थाः, स्थापयन् स्वचिह्नानि, कुर्वन्, कीर्तनानि, लेखयन् शासनानि, पूजयन् अग्रजन्मनः प्रणमन् मुनीन्, पालयन् आश्रमान्, जनयन् जनानुरागम्, प्रकाशयन् विक्रमम्, आरोपयन् प्रतापम्, उपचिन्वन् यशः, विस्तारयन् गुणान्, प्रख्यापयन् सच्चरितम्, उद्योतयन् पौरुषम्, आमृद्नन् वेलावनानि पृथिवीं विचचार ।

—कादम्बरी पूर्वार्द्ध

च और प्रत्यूषसि बहुत सवेरे ही उत्थाय उठकर सेना-समुदायेन सेना के समुदाय से वसुन्धराम् पृथ्वी को जर्जरयन् जर्जरित करता हुआ, गिरीन् पर्वतों को आकम्पयन् कँपाता हुआ, सरितः नदियों को उत्सिः ञ्चन् उलीचता हुआ, सरांसि सरोवरों को रिक्तीकुर्वन् खाली करता हुआ, काननानि वनों को चूर्णयन् रौंदता हुआ, विषमाणि नीची-ऊँची जमीन को समीकुर्वन् बराबर करता हुआ दुर्गाणि दुर्गम प्रदेशों को दलयन् दबाता हुआ निम्नानि निम्न स्थलो को पूरयन् भरता हुआ, स्थलानि स्थलों को निम्नयन् निम्न करता हुआ प्रातिष्ठत प्रस्थान किया।

च और शनैः शनैः धीरे-धीरे स्वेच्छया इच्छानुसार परिभ्रमन् घूमता हुआ, उन्नतान् उन्नतों को नमयन् झुँकाता हुआ, भीतान् डरे हुए लोगों को आश्वासयन् आश्वासन देता हुआ, शरणागतान् शरणागतों की रक्षन् रक्षा करता हुआ, विटपकान् लम्पटों को उन्मूलयन् निर्मूल करता हुआ, कण्टकान् काँटों को उत्सादयन् नष्ट करता हुआ, स्थान-स्थाननेषु स्थान-स्थान पर राजपुत्रान् राजपुत्रों को अभिषिञ्चन् अभिषिक्त करता हुआ, रत्नानि रत्नों को समर्जयन् उपार्जन करता हुआ, उपायनानि भेटों की प्रतीच्छन् स्वीकार करता हुआ, करान् करो को गृह्णन् लेता हुआ, देशव्यवस्थाम् देश व्यवस्था को आदिशन् आदेश देता हुआ, स्वचिह्नानि अपने चिन्हों को स्थापयन् स्थापित करता हुआ, कीर्तनानि अपने पराक्रम आदि का गुणगान कुर्वन् करता हुआ, शासनानि आज्ञापत्रों को लेखयन् लिखता हुआ, अग्रजन्मनः ब्राह्मणों को पूजयन् पूजता हुआ, मुनीन् मुनियों को प्रणमन् प्रणाम करता हुआ, आश्रमान् आश्रमों का पालयन् पालन करता हुआ, जनानुरागं जनता में अनुराग जनयन् पैदा करता हुआ, विक्रमम् पराक्रम को प्रकाशयन् दिखाता हुआ, प्रतापम् प्रताप को फैलाता हुआ, यशः यश को उपचिन्वन् बढ़ाता हुआ, गुणान् गुणों को विस्तारयन् फैलाता हुआ, सच्चरितम् सच्चरित्र को प्रख्यापयन् प्रख्यात करता हुआ, वेलाव-

नानि तट के वनों को आसृद्रन् नष्ट करता हुआ, पौरुषम् पौरुष को उद्यौतयन् प्रकाशित करता हुआ...पृथिवीं पृथ्वी पर विचचार विचरण करने लगे ।

समाधिस्थ बुद्ध को डरवाने और उनकी समाधि भग्न करने के लिये मारसेना के राक्षसों का अक्रमण

आशीविषान् वमन्तः, अयोगुडानि निर्गिलन्तः, धूमकेतून् उत्सृजन्तः, ज्वलित-ताम्र-लौहवर्षं प्रवर्षन्तः, विद्युद्वर्षां क्षिपन्तः, वज्राशनिं प्रमुञ्चन्तः, तप्ताम् अयोवालुकां प्रवर्षन्तः, कालमेघान् सञ्जनयन्तः, वातवृष्टिम् उत्पादयन्तः, शरमेघवर्षान् उत्सृजन्तः, कालरात्रिं दर्शयन्तः, रावं सञ्जनयन्तः बोधिसत्वम् अभिधावन्ति स्म ।

केचित् पाशान् भ्रामयन्तः, महापर्वतान् प्रपातयन्तः, महासागरान् क्षोभयन्तः, लङ्घयन्तो महापर्वतान्, चालयन्तो मेरुपर्वतराजम्, अभिधावन्तः, पलायमानाः, विक्षिपन्तः अङ्ग-प्रत्यङ्गानि, भ्रामयन्तः शरीराणि, हसन्तो महाहास्यम्, उरांसि प्रस्फोटयन्तः, उरांसि ताड़यन्तः, केशान् धुन्वन्तः, पीतमुखाः, नीलशरीराः, ज्वलितशिरसः, ऊर्ध्वकेशाः, इतस्ततो वेगेन परिधावन्तः, गरुडाक्षाश्च बोधिसत्वं भीषयन्ति स्म ।

—ललितविस्तर २१ अ.

आशीविषान् सर्पों का वमन्तः वमन करते हुए, अयोगुडानि लोहे के गोलों को निर्गिलन्तः उगिलते हुए, धूमकेतून् धूमकेतुओं को उत्सृजन्तः छोड़ते हुए, ज्वलित-ताम्र-लौह-वर्षं जलते हुए लाल लाल लोहों की वर्षा प्रवर्षन्तः बरसाते हुए, विद्युद्वर्षां बिजलियों की वर्षा क्षिपन्तः करते हुए, वज्राशनिं वज्र को प्रमुञ्चन्तः छोड़ते हुए, तप्ताम् गर्म अयोवालुकां लोहे के बालुओं को प्रवर्षन्तः बरसाते हुए, कालमेघान् कालमेघों को सञ्जनयन्तः पैदा करते हुए, वातवृष्टिम् झञ्झावात

उत्पादयन्तः पैदा करते हुए, शर-मेघ-वर्षान् बाणरूपी मेघों की वर्षा उत्सृजन्तः करते हुए, कालरात्रिं कालरात्रि दर्शयन्तः दिखलाते हुए (तथा) रावं हो-हल्ला सञ्जनयन्तः मचाते हुये बोधिसत्वम् बुद्ध की ओर अभिधावन्ति स्म चारो ओर से दौड़ते थे।

केचित् कुछ लोग पाशान् पाशों को भ्रामयन्तः घुमाते हुए, महापर्वतान् बड़े-बड़े पर्वतों को प्रपातयन्तः गिराते हुए, महासागरान् बड़े-बड़े समुद्रो को क्षोभयन्तः क्षुब्ध करते हुए, महापर्वतान् बड़े बड़े पर्वतों को लङ्घयन्तः लाँघते हुए, मेरु-पर्वत-राजम् पर्वतराज मेरु को चालयन्तः हिलाते हुए, अभिधावन्तः चारां ओर दौड़ते हुए, पलायामानः भागते हुए, अङ्ग-प्रत्यङ्गानि अङ्ग-प्रत्यङ्गों को विक्षिपन्तः फेंकते हुए, शरीराणि शरीर को भ्रामयन्तः हिलाते हुए, महाहास्यम् हसन्तः अट्टहास करते हुए, उरांसि छातियों को ताडयन्तः पीटते हुए, केशान् केशों को धुन्वन्तः धूनते हुए, पीतमुखाः पीले मुख वाले, नीलशरीराः नील शरीर वाले, ज्वलितशिरसः जलते हुए शिरवाले, ऊर्ध्वकेशाः ऊपर केश वाले, इतस्ततो इधर-उधर वेगेन वेग से परिधावन्तः दौड़ते हुए, गरुडाक्षाः गरुड़ जैसी आँख वाले (राक्षस) बोधिसत्वं बुद्ध को भीषयन्ति स्म डरवाते थे।

मूढमति पुरुषों का स्वभाव

प्रकृति-मूढमतयः प्रेक्षाविहीना हि मुञ्चन्तः सौजन्यं, संचिन्वन्तः सर्वदोषान्, उत्सारयन्तः कीर्तिम्, उरीकुर्वाणा अवर्णवादम्, विनाशयन्तः कृतम्, व्याक्रोशयन्तः कृतघ्नताम्, परिहृत्य प्रभुताम्, अनुप्रविश्य बालिश्यम्, अनारोप्य गरिमाणम्, आरोप्य लघिमानम्, अनर्थमपि अभ्युदयम्, अमङ्गलमपि कल्याणम्, अकृत्यमपि कृत्यमाकलयन्ति।

गद्यचिन्तामणि १.

प्रकृति-मूढमतयः प्रकृति से ही मूढमति (अत एव) प्रेक्षाविहीनाः समझने बूझने की शक्ति से रहित (पुरुष) सौजन्यं सुजनता को मुञ्चन्तः छोड़ते हुए, सर्वदोषान् सब दोषों को संचिन्वन्तः सञ्चय करते हुए, कीर्तिं यश को उत्सारयन्तः दूर करते हुए, अवर्णवादं निन्दा एवं कलङ्क को उररीकुर्वाणाः स्वीकार करते हुए, कृतं किये हुए काम को भी विनाशयन्तः बिगाड़ते हुए, कृतघ्नतां कृतघ्नता को व्याक्रोशयन्तः प्रगट करते हुए, प्रभुताम् प्रभुता को परिहृत्य छोड़कर, वालिश्यम् मूर्खता को अनुप्रविश्य ग्रहण कर, गरिमाणम् बड़प्पन को अनारोप्य छोड़ कर, लघिमानं लघुता को आरोप्य स्वीकार कर, अनर्थम् अपि अनर्थ को भी अभ्युदयम् अभ्युदय, अमङ्गलम् अपि अमङ्गल को भी कल्याणं कल्याण तथा अकृत्यम् अपि अकर्तव्य को भी कृत्यं कर्तव्य आकलयन्ति समझते हैं ।

क्त्वा, ल्यप्

महाश्वेता का वृत्तान्त

प्रत्यूषसि तु उत्थाय तस्मिन् एव सरसि स्नात्वा, तमेव कमण्डलुम आदाय, तानि एव च वल्कलानि ताम् एव अक्षमालां गृहीत्वा, बुद्ध्वा निःसारतां संसारस्य, ज्ञात्वा च मन्दपुण्यताम् आत्मनः, निरूप्य च अप्रतीकार-दारुणताम् व्यसनोपनिपातानाम् , आकलय्य दुर्निवारतां शोकस्य, दृष्ट्वा च निष्ठुरतां दैवस्य, चिन्तयित्वा च अति बहुलदुःखतां स्नेहस्य, भावयित्वा च अनित्यतां सर्वभावानाम्, अवधार्य च अकाण्डभङ्गुरतां सर्वसुखानां, अविगणय्य तातं अम्बां च, परित्यज्य सकलबन्धुवर्गम् , निर्वर्त्य विषयसुखेभ्यो मनः, संयम्य इन्द्रियाणि, गृहीतब्रह्मचर्या देवं त्रैलोक्यनाथं शरणमिमं शरणार्थिनी स्थाणुम् आश्रितवती अस्मि ।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

प्रत्यूषसि उषाकाल में उत्थाय उठकर, तस्मिन् एव उसी सरसि सरोवर में स्नात्वा स्नान कर, तम् एव उसी कमण्डलुम् कमण्डलु को आदाय लेकर, तानि एव उन्हीं वल्कलानि वल्कलों को च और ताम् एव उसी अक्षमालां अक्षमाला को गृहीत्वा लेकर, संसारस्य संसार की निःसारतां असारता बुद्ध्वा समझ कर, आत्मनः अपनी मन्दपुण्यतां मन्दपुण्यता ज्ञात्वा जान कर, व्यसनोपनिपातानाम् संकटों की अप्रतीकार-दारुणताम् अपरिहार्य दारुणता को निरूप्य विचार कर, शोकस्य शोक की दुर्निवारतां दुर्निवारता को आकलय्य समझ कर, दैवस्य दैव की निष्ठुरतां निष्ठुरता को दृष्ट्वा देखकर, स्नेहस्य स्नेह की अतिबहुल-दुःखतां अत्यधिक दुःखमयता को चिन्तयित्वा सोच कर, सर्वभावानाम् समस्त वस्तुओं की अनित्यतां अनित्यता भावयित्वा समझ कर, सर्व-सुखानां समस्त सुखों की अकाण्ड-भङ्गुरतां असमय में ही विनाशशीलता का अवधार्य निश्चय कर, तातं पिता का च और अम्बां माता का भी अविगणय्य परवाह न कर, सकल-बन्धुवर्गम् समस्त बन्धुवर्ग को परित्यज्य छोड़कर, मनः मन को विषयसुखेभ्यः विषय सुखों से निवर्त्य हटाकर, इन्द्रियाणि इन्द्रियों को संयम्य संयत कर, गृहीत-ब्रह्मचर्या ब्रह्मचर्य धारण कर, शरणार्थिनी शरणार्थिनी हो इमं इस त्रैलोक्यनाथं त्रैलोक्यनाथ देवं देव स्थाणुं शंकर की शरणं शरण में आश्रितवती अस्मि आयी हूँ ।

महाश्वेता की स्वगत चिन्ता

यदि तावत् इतरकन्यका इव विहाय लज्जाम्, उत्सृज्य धैर्य्यम्, उन्मुच्य विनयम्, अचिन्तयित्वा जनापवादम्, अतिक्रम्य सदाचारम्, उल्लङ्घ्य शीलम्, अवगणय्य कुलम्, अङ्गीकृत्य अयशः, रागान्धवृत्तिः, अननुज्ञाता पित्रा, अननुमोदिता मात्रा, स्वयम् उपगम्य ग्राहयामि पाणिम्, एवं गुरुजनातिक्रमात् अधर्मो महान् ।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

यदि यदि इतरकन्यका इव इतर कन्याओं के ही समान लज्जाम् लज्जा को विहाय छोड़कर, धैर्य्यम् धैर्य्य को उत्सृज्य छोड़कर, विनयम् विनय को उन्मुच्य छोड़कर, जनापवादं जनापवाद की अचिन्तयित्वा चिन्ता न कर, सदाचारं सदाचार का अतिक्रम्य अतिक्रमण कर, शीलं शील का उल्लङ्घ्य उल्लंघन कर, कुलम् कुल की अविगणय्य परवाह न कर, अयशः अयश को अङ्गीकृत्य स्वीकार कर, रागान्धवृत्तिः प्रेम के कारण अन्धी होकर, पित्रा पिता से अननुज्ञाता बिना आज्ञा प्राप्त किये, मात्रा माता से अननुमोदिता बिना अनुमोदन प्राप्त किये, स्वयं खुद उपगम्य जाकर पाणिम् ग्राहयामि पाणिग्रहण कराती हूँ (तो) एवं ऐसा करने से गुरुजनातिक्रमात् गुरुजनों का अतिक्रमण होने के कारण महान् बहुत बड़ा अधर्मः अधर्म (होगा)।

एक कठिन यात्रा का वर्णन

महानेष उच्चो गिरिः, अन्धतमसं व्याप्तम्, अविदितचरः पन्थाः, तथापि क्वचिद् उत्प्लुत्य, क्वचित् शाखा आलम्ब्य, क्वचिद् उपविश्य, क्वचित् निर्झरजलान्तः प्रविश्य, क्वचित् लताजालानि अपसार्य, क्वचिद् विद्धान् कण्टकान् अपनीय, कथं कथमपि दुर्गस्य नेदीयस्याम् अधित्यकायाम् आगतः।

—शिवराजविजय, नवम निश्वास

एष यह महान् उच्चः बड़ा ऊँचा गिरिः पर्वत है, अन्धतमसं अन्धकार व्याप्तम् चारो तरफ फैला हुआ है, पन्थाः मार्ग अविदितचरः अज्ञात है तथापि तब भी क्वचित् कहीं उप्लुत्य कूद कर, क्वचित् कहीं शाखाः शाखाओं को आलम्ब्य पकड़ कर, क्वचित् कहीं उपविश्य बैठ कर, क्वचित् कहीं निर्झर-जलान्तः निर्झरों के जल के भीतर प्रविश्य घुस कर, क्वचित् कहीं लताजालानि लताओं के जालों को अपसार्य हटाकर, क्वचित् कहीं विद्धान् गड़े हुए कण्टकान् काँटों को अपनीय निकालकर,

कथंकथमपि किसी किसी प्रकार से दुर्गस्य दुर्ग की नेदीयस्याम् अधिक समीपवाली अधित्यकायाम् अधित्यका पर आगतः आया।

एक उत्सव सम्बन्धी क्रियाकलाप

गणेशशास्त्री तु सहर्षवर्षं वीरम् आशीराशिभिः अभिनन्द्य, विधिपूर्वं व्रतोत्सर्गं कर्म निर्वर्त्य, चिरप्रवृद्धान् केशान् वापयित्वा, उद्वर्त्य, अभ्यञ्ज्य, स्नापयित्वा, नवाम्बराणि परिधाप्य, देवान् ब्राह्मणान् प्रणमय्य, महोत्सवम् अकारयत्।

—शिवराजविजय, द्वादश निश्वास

गणेशशास्त्री तु गणेशशास्त्री तो सहर्षवर्षं हर्ष की वर्षा के साथ (अत्यन्त हर्ष से) वीरम् वीर को आशी-राशिभिः आशीर्वाद के राशियों से (अनेक आशीर्वादों से) अभिनन्द्य अभिनन्दित कर, विधिपूर्वं विधिपूर्वक व्रतोत्सर्गं कर्म व्रतोत्सर्ग के काम को निर्वर्त्य निपटा कर, चिरप्रवृद्धान् बहुत दिनों से बढ़े हुए केशान् केशों का वापयित्वा मुडवा कर, उद्वर्त्य उबटन लगाकर, अभ्यञ्ज्य तेल लगाकर, स्नापयित्वा नहवाकर, नवाम्बराणि नवीन वस्त्रों को परिधाप्य पहना कर, देवान् देवताओं को ब्राह्मणान् ब्राह्मणों को प्रणमय्य प्रणाम कराकर महोत्सवम् महोत्सव अकारयत् कराया।

तुमुन्

अमरावती पर आक्रमण करने के लिये दानवसेना की यात्रा

पर्यवसितुमिव भूधरान् अङ्गुलि-स्फोटेन, परिक्षेप्तुमिव मुख-मारुतेन सप्त सागरान्, उन्मूलयितुमिव समूलमेव पातालम्, उत्क्षेप्तुमिव दूरमन्तरिक्षम्, व्यत्यासयितुमिव विध्यण्डमण्डलम्, निर्वापयितुमिव चन्द्रार्क-दीपिकाम्, दग्धुमिव दहनमपि, भङ्क्तुमिव

प्रभञ्जनमपि, वद्धुमिव पाशिनमपि, हन्तुमिव दुर्दान्तमन्तकमपि... सन्नद्धन्त्या सेनया साकमागत्य...सिंहनाद—कोलाहलेन बोधयामासुरमृताशनान्।

—नीलकण्ठविजय, प्रथम आश्वास

अङ्गुली-स्फोटेन चुटकी से भूधरान् पर्वतों को पर्यवसितुम् इव मानों समाप्त करने के लिये, मुखमारुतेन फूँक से सप्त सातों सागरान् समुद्रों को परिक्षेप्तुम् इव मानों फेकने के लिये, पातालम् पाताल को समूलम् एव जड़ के साथ ही उन्मूलयितुम् इव मानों उखाड़ देने के लिये, अन्तरिक्षम् आकाश को दूरम् दूर तक उत्क्षेप्तुम् इव मानों फेंक देने के लिये, विध्यण्ड-मण्डलम्, विधाता के ब्रह्माण्ड-मण्डल को व्यत्यासयितुम् इव मानों उलट-पुलट कर देने के लिये, चन्द्रार्क-दीपिकाम् चन्द्रमा एवं सूर्य रूपी दीपक को निर्वापयितुम् इव मानों बुझा देने के लिये, दहनम् अपि अग्नि को भी दग्धुम् इव मानों जला देने के लिये, प्रभञ्जनम् अपि उग्र हवा को भी भङ्क्तुम् इव मानों तोड़-फोड़ देने के लिये, पाशिनम् अपि वरुण को भी वद्धुम् इव मानों बाँध देन के लिये, दुर्दान्तम् दुर्दान्त अन्तकम् अपि यमराज को भी हन्तुम् इव मानों मारने के लिये सन्नद्धन्त्या तैयार होती हुई सेनया सेना के साकम् साथ आगत्य आकर (असुरों ने) सिंहनाद-कोलाहलेन सिंह की आवाज के सदृश कोलाहल से अमृताशनान् देवताओं को बोधयामासुः जगाया।

क्त* एवं क्तवतु

तारापीड़ द्वारा राजकुमार चन्द्रापीड़ से अपने कर्तव्यों का वर्णन

मया अस्खलितेन एव चिरं पदे स्थितम्, न पीड़िताः प्रजा

---

* क्त प्रत्यय भी कर्मवाच्य एवं भाववाच्य में ही होता है। नीचे के गद्यांशों में पाठक इसे ध्यानपूर्वक समझें।

लोभेन, न उद्वेजिता गुरवः अवमानेन, न विमुखिताः सन्तो मदेन, न उत्त्रासिताः प्राणिनः क्रोधेन, न हासितः आत्मा हर्षेण, न हतः परलोकः कामेन, राजधर्मः अनुरुद्धः न स्वरुचिः, वृद्धाः समासेविता न व्यसनानि, सतां चरितानि अनुवर्तितानि न इन्द्रियाणि, धनुः उन्नमितं न मनः, वृत्तं रक्षितं न शरीरम्, वाच्यात् भीतं न मरणात्।

—कादम्बरी, उत्तरार्द्ध

मया मैं अस्खलितेन एव बिना कोई त्रुटि किये ही चिरं बहुत दिनों तक पदे पद पर स्थितम् बना रहा, लोभेन लोभ से प्रजाः प्रजाओं को न पीडिताः पीड़ित नहीं किया, अवमानेन अपमान करके गुरवः गुरुजनों को न उद्वेजिताः नहीं उद्वेजित किया, मदेन मद से सन्तः सज्जन पुरुषों को न विमुखिताः विमुख नहीं किया, क्रोधेन क्रोध से प्राणिनः प्राणियों को न उत्त्रासिताः नहीं डरवाया, हर्षेण हर्ष से आत्मा आत्मा को न हासितः उपहास का पात्र नहीं बनाया, कामेन काम से परलोकः परलोक को न हतः नहीं बिगाड़ा, तथा—राजधर्मः अनुरुद्धः राजधर्म का ख्याल रक्खा न स्वरुचिः अपनी रुचि का नहीं, वृद्धाः समासेविताः वृद्धों की सेवा की न व्यसनानि व्यसनों की नहीं, सतां सज्जनों के चरितानि अनुवर्तितानि चरित्रों का अनुगमन किया न इन्द्रियाणि इन्द्रियों का नहीं, धनुः धनुष को उन्नमितं ऊपर उठाया न मनः मन को नहीं, वृत्तं रक्षितं चरित्र की रक्षा की न शरीरम् शरीर की नहीं, वाच्यात् अपवाद से भीतं डरा मरणात् मृत्यु से नहीं।

चन्द्रापीड़ द्वारा वैशम्पायन का कुशल प्रश्न पूछना

अपि दृष्टः त्वया अच्छोदसरसि वैशम्पायनः? पृष्टश्च अवस्थानकारणम्? पृष्टेन किञ्चित् कथितं न वा? पश्चात्तापी वा अस्मत्परित्यागेन? स्मरति वा अस्माकम्? पृष्टोऽसि वा अनेन

किञ्चित् मदीयम्? उत्पन्नो वा आलापो युवयोः? उपलब्धो वा अभिप्रायः? मातापित्रोर्वा सन्दिष्टं किञ्चित्? परिबोधितो वा त्वया गमनाय? आवेदितं वा अस्मदीयम् आगमनम्? उपलक्षितो वा अभिप्रायः त्वया? न अपयास्यति वा तस्मात् प्रदेशात्? दास्यति वा दर्शनम्? ग्रहीष्यति वा अस्मदनुनयम्? आगमिष्यति वा पुनर्मया सह? किं कुर्वन् दिवसमास्ते? को वा विनोदः अस्य तिष्ठति इति?

—कादम्बरी, उत्तरार्द्ध

अपि क्या त्वया तुमने अच्छोदसरसि अच्छोद सरोवर में वैशम्पायनः वैशम्पायन को दृष्टः देखा? और अवस्थान-कारणम् वहां ठहरने का कारण पृष्टः पूछा? पृष्टेन पूछने पर (उन्होंने) किञ्चित् कुछ कथितं कहा न वा या नहीं? अस्मत्परित्यागेन हम लोगों के परित्याग से पश्चात्तापी वा? पछताता है क्या? अस्माकं हम लोगों को स्मरति वा स्मरण करता है क्या? अनेन उन्होंने किञ्चित् कुछ मदीयम् मेरे सम्बन्ध में पृष्टः असि वा तुमसे पूछा है क्या? युवयोः तुम दोनों में आलापः बातचीत उत्पन्नः वा हुई है क्या? अभिप्रायः अभिप्राय उपलब्धः वा मालूम हुआ क्या? मातापित्रोः माता पिता को किञ्चित् कुछ सन्दिष्टं वा सन्देश दिया है क्या? गमनाय जाने के लिये त्वया तुमने परिबोधितः वा समझाया क्या? अस्मदीयं हमारा आगमनं आगमन आवेदितः वा क्या बतला दिया? त्वया तुमने अभिप्रायः अभिप्राय उपलक्षितः वा कुछ समझा क्या? तस्मात् उस प्रदेशात् प्रदेश से अपयास्यति वा अन्यत्र जायगा क्या? दर्शनं दर्शन दास्यति वा देगा या नहीं? अस्मदनुनयम् हमारे अनुरोध को ग्रहीष्यति वा मानेगा क्या? पुनः फिर मया मेरे सह साथ आगमिष्यति वा आयगा क्या? दिवसम् दिनभर किं कुर्वन् आस्ते क्या करता रहता है? तस्य उसके लिये विनोदः विनोद का साधन कः क्या तिष्ठति रहता है?

५—कर्मवाच्य, भाववाच्य एवं कर्मकर्तृवाच्य❀

चन्द्रापीड़ की माता का स्नेह

तात ! मम पुनर्न ईदृशी प्रथमगमनेऽपि ते पीड़ा समुत्पन्ना यादृशी तव गमनेन अधुना। अतो दीर्यते इव मे हृदयं, समुत्पाट्यन्ते इव मर्माणि, उत्क्वथ्यते इव शरीरम्, उच्च्यवते इव चेतः, विघटन्ते इव सन्धिवन्धनानि, उन्मथ्यते इव मनः, निर्यान्ति इव प्राणाः।

—कादम्बरी, उत्तरार्द्ध

तात ! पुत्र ! ते तुम्हारे प्रथमगमने प्रथमगनन मे अपि भी मम मुझे ईदृशी ऐसी पीडा पीड़ा न उत्पन्ना नहीं उत्पन्न हुई यादृशी जैसी तव तुम्हारे गमनेन जाने से अधुना इस समय। अतः इसलिये मे मेरा हृदयं हृदय दीर्यते इव मानों फटा जा रहा है, मर्माणि मर्मस्थल समुत्पाट्यन्ते इव मानो उखाडे जा रहे हैं, शरीरं शरीर उत्क्वथ्यते इव मानो उबाला जा रहा है, चेतः हृदय उच्च्यवते इव मानो च्युत हो रहा है, सन्धि वन्धनानि सन्धियों के वन्धन (जोड़) विघटन्ते इव मानो अलग-अलग हो रहे हैं, मनः मन उन्मथ्यते इव मानो मथा जा रहा है, प्राणाः प्राण निर्यान्ति इव मानो निकलते जा रहे हैं।

शुकनास द्वारा राजकुमार चन्द्रापीड़ को यौवनसुलभ दोषों से बचने के लिये उद्बोधन

अस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने कुमार ! तथा प्रयतेथाः यथा न उपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक् क्रियसे

❀ नीचे के गद्यांशों में पाठक वाक्यों के भेदों को ठीक-ठीक समझें।

गुरुभिः, न उपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः, यथा च न प्रतार्यसे विटैः, न प्रहस्यसे कुशलैः, न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, न उन्मत्तीक्रियसे मदनेन, न आक्षिप्यसे विषयैः, न अवकृष्यसे रागैः, न उपह्रियसे सुखेन ।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

कुमार ! कुमार ! अस्मिन् इस महामोहान्धकारिणि महा मोह रूपी अन्धकार वाले यौवने जवानी में तथा ऐसा प्रयतेथाः प्रयत्न करना यथा जिससे जनैः लोगों द्वारा न उपहस्यसे हँसे न जाओ, साधुभिः साधुजनों द्वारा न निन्द्यसे निन्दित न होवो, गुरुभिः गुरुजनों द्वारा न धिक् क्रियसे धिक्कृत न होवो, सुहृद्भिः मित्रों द्वारा न उपालभ्यसे उपालम्भ के पात्र न बनो, विद्वद्भिः विद्वानों के द्वारा न शोच्यसे शोचनीय न होवो, यथा च और जिस प्रकार विटैः विटों द्वारा न प्रतार्यसे ठगे न जाओ, कुशलैः कुशल पुरुषो द्वारा न प्रहस्यसे हँसे न जाओ, भुजङ्गैः बदमाश लोगों द्वारा न आस्वाद्यसे उपभोग में न लाये जावो, सेवक वृकैः सेवक रूपधारी वृको से न अवलुप्यसे गायब न किये जावो, धूर्तैः धूर्तों द्वारा न वञ्च्यसे धोखे में न डाले जाओ, वनिताभिः स्त्रियों द्वारा न प्रलोभ्यसे लुभाये न जावो, लक्ष्म्या लक्ष्मी के द्वारा न विडम्ब्यसे विडम्बित न किये जाओ, मदेन मद के द्वारा न नर्त्यसे नचाये न जाओ, मदनेन कामदेव के द्वारा न उन्मत्तीक्रियसे उन्मत्त न किये जाओ, विषयैः विषयो के द्वारा न आक्षिप्यसे दोषी न बनाये जाओ, रागैः रागों के द्वारा न अवकृष्यसे आकृष्ट न किये जाओ (तथा) सुखेन सुख के द्वारा न उपह्रियसे बहका न लिये जाओ ।

न कस्तूरिका कुग्रामे वने वा विक्रीयते, न सुवर्णं कषपट्टिकां विना शिलापट्टके कष्यते ।

—कर्पूरमञ्जरी १ यवनिकान्तरम्

कस्तूरिका कस्तूरी कुग्रामे नीच गाँव में वा अथवा वने वन में न विक्रीयते नहीं बेची जाती है (और) सुवर्णं सोना कषपट्टिकां कसौटी विना छोड़कर शिलापट्टके सिलवट पर न कृष्यते नहीं कसा जाता है।

चन्द्रापीड से केयूरक द्वारा कादम्बरी की उग्र उत्कण्ठा का वर्णन

किं करोमि, ? कथय कथं कथ्यते, कया वृत्या वर्ण्यते, कीदृशेन उपायेन प्रदर्श्यते, केन प्रकारेण आवेद्यते, कया युक्त्या प्रकाश्यते, कतमया वेदनया उपमीयते, बलवती तदुत्कण्ठा।

किं करोमि ? क्या करूँ ? कथय कहो, बलवती अत्यन्त उत्कट तदुत्कण्ठा उसकी उत्कण्ठा कथं कैसे कथ्यते कही जाय ? कया वृत्या किस ढंग से वर्ण्यते वर्णित की जाय ? कीदृशेन किस उपायेन उपाय से प्रदर्श्यते दिखायी जाय ? केन प्रकारेण किस प्रकार से आवेद्यते बतायी जाय ? कया युक्त्या किस युक्ति से प्रकाश्यते प्रकाशित की जाय (तथा) कतमया किस वेदनया वेदना से उपमीयते (उसकी) उपमा दी जाय ?

उत्सव के समय दिये गये आदेश

समुच्छ्रीयन्तां वैजयन्त्यः, बध्यन्तां तोरणानि, सिच्यन्तां चन्दनाम्भोभिः पन्थानः, मण्ड्यन्तां मसृण-मुक्ताफल-क्षोद-रङ्गावलीभिः प्राङ्गणानि, क्रियन्ताम् कुसुम-प्रकर-भाञ्जि चत्वराणि, पूज्यन्तां द्विजन्मानो देवताश्च, दीयन्तां दानानि, गीयन्तां मङ्गलानि, विसृज्यन्तां वैरिवन्द्यः, मुच्यन्तां पक्षिणोऽपि पञ्जरेभ्यः।

—नलचम्पू, चतुर्थ उछ्वास

वैजयन्त्यः पताकायें समुच्छ्रीयन्ताम् फहरायी जायँ, तोरणानि तोरण वध्यन्ताम् बांधे जायँ, पन्थानः मार्ग चन्दनाम्भोभिः चन्दन जल से सिच्यन्ताम् सींचे जाँय, प्राङ्गणानि आँगन मसृण-मुक्ताफल-क्षोद-रङ्गावलीभिः मुलायम मोतियों के चूर्ण से बने हुए रङ्गों से मण्ड्यन्ताम् अलंकृत किये जायँ, चत्वराणि चबूतरे कुसुम-प्रकर-भाञ्जि कुसुम-समूह से युक्त क्रियन्ताम् किये जाँय, द्विजन्मानः ब्राह्मण च और देवताः देवतागण पूज्यन्ताम् पूजे जाँय, दानानि दान दीयन्ताम् दिये जाँय, मङ्गलानि मङ्गल गीयन्ताम् गाये जाँय, वैरिवन्द्यः वैरियों के बन्दी विसृज्यन्ताम् छोड़े जाँय (तथा) पक्षिणः अपि पक्षी भी पञ्जरेभ्यः पिंजरों से मुच्यन्ताम् मुक्त कर दिये जाँय।

महान् पुरुषों का धर्म प्रेम

महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न च धर्मं परित्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षायै सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि, वर्षास्वपि, ग्रीष्मघर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरि-कन्दरेष्वपि, व्याल-वृन्देष्वपि, सिंह-सङ्घेष्वपि, वारण-वारेष्वपि, चन्द्रहास-चमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति।

—शिवराजविजय, द्वितीय निश्वास

महान्तः महान् पुरुष धर्मस्य कृते धर्म के लिये लुण्ठ्यन्ते लूटे जाते हैं; पात्यन्ते गिराये जाते हैं, हन्यन्ते मारे जाते हैं, (परन्तु) धर्मं धर्म को न परित्यजन्ति नहीं छोड़ते किन्तु अपितु धर्मस्य धर्म की रक्षायै रक्षा के लिये सर्वसुखानि सब सुखों को अपि भी त्यक्त्वा छोड़ कर निशीथेषु अपि आधी रात में भी, वर्षासु अपि वर्षा में भी, ग्रीष्म-घर्मेषु अपि ग्रीष्म ऋतु की धूप में भी, महारण्येषु अपि बड़े बड़े जंगलों में भी, कन्दरि-कन्दरेषु अपि पर्वतों की गुफाओं में भी, व्याल-वृन्देषु

अपि सर्पों के समुदाय में भी, सिंह-सङ्घेषु अपि सिंहो के झुण्ड में भी, वारण-वारेषु अपि हाथियां के झुण्ड में भी चन्द्रहास-चमत्कारेषु अपि तलवारों की चमचमाहट में भी निर्भयाः निर्भय होकर विचरन्ति विचरते हैं।

विजय यात्रा के समय चन्द्रापीड के प्रति वैशम्पायन की उक्ति

युवराज! किं न जितं महाराजाधिराजेन तारापीडेन, यज्जेष्यसि? का दिशो न वशीकृता या वशीकरिष्यसि? कानि दुर्गाणि न प्रसाधितानि, यानि प्रसाधयिष्यसि? कानि द्वीपान्तराणि न आत्मीकृतानि, यानि आत्मीकरिष्यसि? कानि रत्नानि न उपार्जितानि, यानि उपार्जयिष्यसि?

के वा न प्रणता राजानः? कैर्न विरचितः शिरसि···सेवाञ्जलिः? कैर्न मसृणीकृता···ललाटैः सभाभुवः? कैर्न घृष्टाः पादपीठे चूड़ामणयः? कैर्न प्रतिपन्ना वेत्रयष्टयः? कैर्न उद्धृतानि चामराणि? कैर्न उच्चारिता जयशब्दाः?

—कादम्बरी पूर्वार्द्ध

युवराज! युवराज! महाराजाधिराजेन महाराजाधिराज तारापीडेन तारापीड ने किं न जितं क्या नहीं जीता? यत् जिसे (आप) जेष्यसि जीतेंगे? का दिशः किन दिशाओं को न वशीकृताः वश में नहीं किया याः जिन्हें वशीकरिष्यसि वश में करेंगे? कानि किन दुर्गाणि दुर्गों को न प्रसाधितानि ठीक नहीं किया यानि जिन्हें प्रसाधयिष्यसि ठीक करेंगे, कानि किन द्वीपान्तराणि द्वीपान्तरों को न आत्मीकृतानि अपना नहीं बना लिया है यानि जिन्हें आत्मीकरिष्यसि अपना बनायेंगे? कानि किन रत्नानि रत्नों को न उपार्जितानि नहीं कमाया यानि जिन्हें उपार्जयिष्यसि? कमायेंगे?

के कौन राजानः राजा लोग न प्रणताः नहीं झुके ? कैः किन्होने शिरसि शिर पर सेवाञ्जलिः सेवाञ्जलि न विरचितः नहीं बांधी ? कैः किन्होने ललाटैः ललाटों से सभाभुवः सभाभूमि को न मसृणीकृताः चिकनी नहीं किया ? कैः किन्होने चूडामणयः चूड़ामणियों को पादपीठे पादपीठ पर न घृष्टाः नहीं घिसा ? कैः किन्होने चामराणि चामरों को न उद्धृतानि नहीं पकड़ा ? कैः किन्होने जयशब्दाः जय जय शब्दों का न उच्चारिताः उच्चारण नहीं किया ?

नगर भ्रमण के पश्चात् राजकुमार चन्द्रापीड़ का राजभवन के समीप आगमन

एवंविधानि च अन्यानि च वदन्तीनां तासाम् आपीयमान इव लोचनपुटैः, आहूयमान इव भूषणरवैः, अनुगम्यमान इव हृदयैः, निवध्यमान इव आभरणरत्न-रश्मि-रज्जुभिः, उपह्रियमाण इव नवयौवनवलिभिः, कुसुममिश्रैः लाजाञ्जलिभिः अवकीर्यमाणः चन्द्रापीडो राजकुलसमीपम् आससाद ।

कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

एवंविधानि इस प्रकार की च तथा अन्यानि अन्य प्रकार की (बातों को) वदन्तीनां बोलती हुईं तासां उन (स्त्रियों) के लोचन-पुटैः नेत्ररूपी पुरवों से आपीयमानः इव मानो पीये जा रहे हों, भूषण-रवैः आभूषणो की आवाज से आहूयमानः इव मानो बुलाये जा रहे हों, हृदयैः हृदयो से अनुगम्यमानः इव मानो अनुगमन किये जा रहे हों, आभरण-रत्न-रश्मि-रज्जुभिः आभूषणो में जड़े हुए रत्नों की किरणरूपी रस्सियों से निबध्यमानः इव मानो बाँधे जा रहे हों, नव-यौवन-वलिभिः नवीन यौवन रूपी उपहार से उपह्रियमाण इव मानो उपहृत किये जा रहे हों (इस प्रकार) कुसुममिश्रैः फूलों से युक्त

लाजाञ्जलिभिः लाजाञ्जलियों से अवकीर्यमाणः अवकीर्ण किये जा रहे चन्द्रापीडः चन्द्रापीड राजकुल-समीपं राजकुल के समीप आससाद पहुँचे।

महर्षि जाबालि के आश्रम का वर्णन

..."उपचर्य्यमाणाऽतिथिवर्गम्, पूज्यमान-पितृदैवतम्, अर्च्यमान-हरिहरपितामहम्, उपदिश्यमान-श्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमान-यज्ञविद्यम्, आलोच्यमान-धर्मशास्त्रम्, पठ्यमान-विविधपुस्तकम्, विचार्यमाण-सकलशास्त्रार्थम्, आरभ्यमाण-पर्णशालम्, उपलिप्यमानाऽजिरम्, अपमृज्यमानोटजाऽभ्यन्तरम्, आबध्यमान-ध्यानम्, साध्यमान-मन्त्रम्, अभ्यस्यमान-योगम्, उपह्रियमाण-वनदेवता-बलिम्, निर्वर्त्यमान-मुञ्जमेखलम्, प्रक्षाल्यमान-वल्कलम्, उपसंगृह्यमाण-समिधम्, संस्क्रियमाण-कृष्णाजिनम्, गृह्यमाण-गवेधुकम्, शोष्यमाण-पुष्करबीजम्, ग्रथ्यमानाऽक्षमालम्, गृह्यमाण-त्रिपुण्ड्रकम्, न्यस्यमान-त्रिदण्डकम्, आपूर्यमाण-कमण्डलुम्... आश्रमम् अपश्यम्।

कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

उपचर्य्यमाणाऽतिथिवर्गम् जहाँ अतिथिवर्ग का आदर-सत्कार किया जा रहा है, पूज्यमान-पितृदैवतम् जहाँ पितरों एवं देवताओं की पूजा की जा रही है, अर्च्यमान-हरिहरपितामहम् जहाँ विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा की अर्चना हो रही है, उपदिश्यमान-श्राद्धकल्पम् जहाँ श्राद्ध-कल्प का उपदेश किया जा रहा है, व्याख्यायमान-यज्ञविद्यम् जहाँ यज्ञविद्या की व्याख्यायें हो रही हैं, आलोच्यमान-धर्मशास्त्रम् जहाँ धर्मशास्त्रों की आलोचना हो रही है, पठ्यमान-विविधपुस्तकम् जहाँ विविध प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही हैं; विचार्यमाण- सकलशास्त्रा-

र्थम् जहाँ सकल शास्त्रों के अर्थ का विचार किया जा रहा है, आरभ्यमाण-पर्णशालम् जहाँ पर्णशालाओं के बनाने का कार्य आरम्भ किया जा रहा है, उपलिप्यमानाजिरम् जहाँ आंगन एवं चबूतरें लीपे जा रहे हैं, अपमृज्यमानोटजाऽभ्यन्तरम् जहाँ पर्णशाला के भीतरी भाग की सफाई की जा रही है, आबध्यमान-ध्यानम् जहाँ ध्यान लगाया जा रहा है, साध्यमान-मन्त्रम् जहाँ मन्त्र साधे जा रहे हैं, अभ्यस्यमान-योगम् जहाँ योग का अभ्यास किया जा रहा है, उपह्रियमाण-वनदेवताबलिम् जहाँ वनदेवताओं को बलि दी जा रही है, निर्वर्त्यमान-मुञ्जमेखलम् जहाँ मूँज की मेखलायें तैयार की जा रही हैं, प्रक्षाल्यमान-वल्कलम् जहाँ वल्कल धोये जा रहे हैं, उपसंगृह्यमाण-समिधम् जहाँ समिधायें एकत्र की जा रही हैं, संस्क्रियमाण-कृष्णाजिरम् जहाँ मृगचर्म का संस्कार किया जा रहा है, गृह्यमाण-गवेधुकम् जहाँ (तालाबों से) कसेरू लिये जा रहे हैं, शोष्यमाण-पुष्करबीजम् जहाँ पुष्कर के बीज सुखाये जा रहे हैं, ग्रथ्यमानाऽक्षमालम् जहाँ अक्षमाला गूँथी जा रही है, गृह्यमाण-त्रिपुण्ड्रकम् जहाँ त्रिपुण्ड्र लगाये जा रहे हैं, न्यस्यमान-त्रिदण्डकम् जहाँ त्रिदण्ड रखा जा रहा है, आपूर्यमाण-कमण्डलुम् जहाँ कमण्डलु भरे जा रहे है (ऐसे) आश्रमं आश्रम को अपश्यम् देखा।



1484



६—अव्यय प्रकरणम्

परिचय तथा कुशलप्रश्न आदि

राजा शूद्रकद्वारा वैशम्पायन से उसके जन्म आदि के सम्बन्ध में प्रश्न

आस्तां तावत् सर्वमेव इदम्, अपनयतु नः कुतूहलम्, आवेदयतु भवान् आदितः प्रभृति कार्त्स्न्येन आत्मनो जन्म। कस्मिन् देशे भवान् कथं जातः ? केन वा नाम कृतम् ? का माता, कस्ते पिता ? कथं वेदानाम् आगमः ? कथं शास्त्राणां परिचयः ? कुतः कलाः समासादिताः ? किं जन्माऽन्तराऽनुस्मरणम् उत वरप्रदानम् ? अथवा विहगवेश-धारी कश्चित् छन्नो निवससि ? क्व पूर्वमुषितम् ? कियद् वा वयः ? कथं पञ्जरबन्धः ? कथं चाण्डालहस्तगमनम् ? इह वा कथम् आगमनम् ? इति।

—कादम्बरी पूर्वार्द्ध

तावत् तबतक इदं यह सर्वमेव सारी ही बातें आस्ताम् बन्द रहें। नः हम लोगों के कुतूहलं कुतूहल को अपनयतु (आप) दूर करें। भवान् आप आदितः आरम्भ से प्रभृति लेकर कार्त्स्न्येन पूर्णरूप से आत्मनः अपना जन्म जन्म आवेदयतु बतलाइये। कस्मिन् देशे किस देश में भवान् आप कथं कैसे जातः उत्पन्न हुए ? केन वा और किसके द्वारा नाम नाम कृतम् रक्खा गया ? का माता कौन माता है ? ते आपके कः पिता कौन पिता हैं ? कथं कैसे वेदानाम् वेदों की आगमः ज्ञानप्राप्ति हुई ? कथं कैसे शास्त्राणां शास्त्रों का परिचयः परिचय हुआ ?

कुतः कहाँ से, किससे कलाः कलायें आसादिताः प्राप्त हुईं ? किंहेतुकं किस कारण से जन्मान्तरानुस्मरणम् दूसरे जन्म का स्मरण हो रहा है ? उत अथवा वरप्रदानम् वरदान (मिला) है ? अथवा या विहङ्गवेषधारी पक्षी का वेष धारण कर कश्चित् कोई (आप अन्य पुरुष) छन्नं छिप कर निवससि रहते हैं ? पूर्वं पहले क्व वा कहाँ उषितम् निवास किया ? कियद् वा कितनी वयः अवस्था है ? कथं कैसे पञ्जर-बन्धनम् पिंजड़े में बन्धन हुआ ? कथं कैसे चाण्डालहस्त-गमनम् चाण्डाल के हाथ में जाना हुआ ? इह वा और यहाँ कथं कैसे आगमनम् आगमन हुआ ?

महाश्वेता के प्रति चन्द्रापीड़ का प्रश्न

अतिमहत् खलु भवद्दर्शनात् प्रभृति मे कौतुकम् अस्मिन् विषये । कतरत्...कुलम् अनुगृहीतं भगवत्या जन्मना ? किमर्थं वा अस्मिन् कुसुमसुकुमारे नवे वयसि व्रतग्रहणम् ? क्वेदं वयः ? क्वेदं तपः ? क्वेयम् आकृतिः ? क्व चायं लावण्यातिशयः ? क्वेयम् इन्द्रियाणाम् उपशान्तिः ? तद् अद्भुतमिव मे प्रतिभाति ।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

अस्मिन् विषये इस विषय में भवद्दर्शनात् आपके दर्शन से प्रभृति लेकर मे मुझे अतिमहत् बहुत बड़ा कौतुकम् कुतूहल है । कतरत् कौन सा कुलम् कुल भगवत्या आप के द्वारा जन्मना जन्म से अनुगृहीतम् अनुगृहीत किया गया है ? किमर्थं वा और किस लिये अस्मिन् इस कुसुमसुकुमारे फूल जैसे सुकुमार नवे नवीन वयसि अवस्था में व्रतग्रहणम् व्रत ले रक्खा है ? क्व कहाँ इदं वयः यह अवस्था ? क्व कहाँ इदं तपः यह तप ? क्व कहाँ इयं आकृतिः यह स्वरूप ? क्व च और कहाँ अयं लावण्यातिशयः यह अतिशय सौन्दर्य ? क्व कहाँ इयम् यह इन्द्रियाणां इन्द्रियों की उपशान्तिः शान्ति ? तत् सो (यह सब) मे मुझे अद्भुतम् इव अद्भुत के समान प्रतिभाति मालूम पड़ रहा है ।

एक महिला से परिचय सम्बन्धी प्रश्न

भद्रे ! का त्वम् ? कुतः समायाता ? किमीहसे ? किं विवक्षसि ? कथमेकाकिनी वनेषु भ्रमन्ती न लज्जसे ? न वा बिभेषि ? रमणीया तवाऽऽकृतिः, वरणीयं वयः–इति कथं न स्वगेहे स्वकुटुम्बेन समं वससि ? किमिति चाञ्चल्यम् अङ्गीकृतवती असि ? स्फुटं वद ।

—शिवराजविजय, नवम निश्वास

भद्रे आर्ये ! का त्वम् कौन हो तुम ? कुतः कहाँ से समागता आयी हो ? किम् क्या ईहसे चाहती हो ? किम् क्या विवक्षसि कहना चाहती हो ? एकाकिनी अकेली वनेषु वनों में भ्रमन्ती घूमती हुई कथं न क्यों नहीं लज्जसे लजाती हो ? वा अथवा न बिभेषि डरती नहीं हो ? तव तुम्हारी आकृतिः स्वरूप रमणीया सुन्दर है, वयः अवस्था वरणीयं वरण करने योग्य है इति इसलिये कथं न क्यों नहीं स्वगेहे अपने घर में स्वकुटुम्बेन अपने कुटुम्ब के समं साथ वससि रहती हो ? किमिति क्यों चाञ्चल्यम् चञ्चलता अङ्गीकृतवती ग्रहण की हुई असि हो ?

पत्रलेखा से चन्द्रापीड़ द्वारा कुशल प्रश्न

पत्रलेखे ! कथय, आगते मयि कथमसि स्थिता ? कियन्ति वा दिनानि ? कीदृशो वा देवीप्रसादः ? का वा गोष्ठ्यः समभवन् ? कीदृश्यो वा कथाः समजायन्त ? को वा अतिशयेन अस्मान् स्मरति ? कस्य वा गरीयसी प्रीतिः ? एवं पृष्टा च व्यजिज्ञपत्—देव ! दत्तावधानेन श्रूयतां यथा स्थिताऽस्मि, यावन्ति वा दिनानि, यादृशो देवीप्रसादः, यथा वा गोष्ठ्यः समभवन्, यादृश्यश्च कथाः समजायन्त, यो वा अतिशयेन तव स्मरति, यस्य वा त्वयि गरीयसी प्रीतिरस्ति इति ।

—कादम्बरी पूर्वार्द्ध

पत्रलेखे ! पत्रलेखा!, कथय कहो, मयि मेरे आगते आ जाने पर कथं किस प्रकार स्थिता असि रहती रही हो ? कियन्ति कितने दिनानि दिनों तक रही हो ? कीदृशः कैसा देवीप्रसादः देवी का अनुग्रह रहा ? का कैसी गोष्ठ्यः गोष्ठियाँ समभवन् हुईं ? कीदृश्यः कैसी कथाः कथायें समजायन्त होती रहीं ? कः कौन अस्मान् हमलोगों को अतिशयेन अधिकतर स्मरति याद करता है ? कस्य किस का गरीयसो विशेष प्रीतिः प्रेम रहता है ? एवं इस प्रकार पृष्टा पूछे जाने पर (पत्रलेखा ने) व्यजिज्ञपत् बतलाया—देव ! महाराज । दत्तावधानेन ध्यान देकर श्रूयताम् सुना जाय यथा जिस प्रकार स्थिता अस्मि रहो हूँ, यावन्ति जितने दिनानि दिनों तक रही हूँ, यादृशः जैसा देवीप्रसादः देवी का अनुराग रहा है, यथा जैसी गोष्ठ्यः गोष्ठियाँ समभवन् हुईं हैं यादृश्यः जैसी कथाः कथायें हुईं, यः जो तव आपको अतिशयेन विशेष रूप से स्मरति याद करता है, यस्य वा और जिसकी त्वयि आपमें गरीयसी अत्यधिक प्रीतिः प्रेम है ।

हर्षविषाद सूचक मनोभाव

तिलकमञ्जरी का पत्र पढ़कर कुमार हरिवाहन का अचेत और चिन्तित होना

ततः कोऽहम् ? क्वायातः ? किमर्थमायातः ? किं मया प्रस्तुतम् ? किमेतद् दिनम् ? किं निशा ? कोऽयं कालः ? किमेतानि दुःखानि ? किं सुखानि ? किं जीवितमिदम् ? किं मरणम् ? किमेष मोहः ? किं चेतना ? किं सत्यमेतत् ? आहोस्वित् इन्द्रजालम् ? किं स्वदेशोऽयम् ? उत विदेशः ? इत्यादि अविद्वान् बलवता समास्कन्दितो मनोदुःखेन कथमपि विसर्ज्य चतुरिकां सौधशिखराद् अवातरम् ।

—तिलकमञ्जरी

ततः उसके पश्चात् कोऽहम् मैं कौन हूँ ? क आयातः कहाँ आया हूँ ? किमर्थम् आयातः किस लिये आया हूँ ? मया मैंने किं प्रस्तुतम् यह क्या कर डाला ? किं क्या एतद् यह दिनं दिन है ? किं क्या यह निशा रात है ? अयं यह कः कैसा कालः समय है ? किं क्या एतानि ये दुखानि दुख हैं ? किं क्या सुखानि सुख हैं ? किं क्या इदं यह जीवितम् जीवन है ? किं क्या मरणम् मरण है ? किं क्या एष यह मोहः मोह है ? किं क्या चेतना चेतना है ? किं क्या एतत् यह सत्यम् सत्य है ? आहोस्वित् अथवा इन्द्रजालम् इन्द्रजाल है ? किं क्या अयं यह स्वदेशः स्वदेश है ? उत अथवा विदेशः विदेश है ? इत्यादि इत्यादि अविद्वान् न समझता हुआ बलवता अत्यधिक मनोदुःखेन मानसिक पीड़ा से समास्कन्दितः आक्रान्त हो कथमपि किसी प्रकार चतुरिकां चतुरिका को विसर्ज्य विसर्जित कर सौध-शिखरात् राजमहल के ऊपर से अवातरम् मैं उतरा ।

वियोग वेदना से व्यथित पुण्डरीक के सम्बन्ध में कपिञ्जल की चिन्ता

क्व तत् तपः ? क्व इयम् अवस्था ? सर्वथा अप्रतीकारा इयम् आपद् उपस्थिता । किमिदानीं कर्तव्यम् ? किम् आचेष्टितव्यम् ? कां दिशं गन्तव्यम् ? किं शरणम् ? कश्च उपायः ? कः सहायः ? कः प्रकारः ? का युक्तिः ? कः समाश्रयः ? येन अस्य असवः सन्धार्यन्ते । केन वा कौशलेन ? कतमया वा युक्त्या ? कतरेण प्रकारेण ? केन वा अवष्टम्भेन ? कया प्रज्ञया, कतमेन वा समाश्वासनेन अयं जीवेत् इत्येते च अन्ये च मे विषण्णहृदयस्य सङ्कल्पाः प्रादुरासन् ।

कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

क्व कहाँ तत् वह तपः तप (और) क्व कहाँ इयं यह अवस्था अवस्था ? सर्वथा बिलकुल अप्रतीकारा प्रतीकार न करने योग्य इयम् यह आपद् आपत्ति उपस्थिता आ पड़ी ? इदानीं अत्र किं कर्तव्यम् क्या करना चाहिये ? किं आचेष्टितव्यम् क्या प्रयत्न करना चाहिये ? कां दिशं किस दिशा की ओर गन्तव्यम् जाना चाहिये ? किं शरणम् ? क्या शरण है ? कश्च उपायः ? और कौन उपाय है ? कः सहायः कौन सहायक है ?; कः प्रकारः ? कौन तरीका है ? का युक्तिः कौन युक्ति है ? कः समाश्रयः ? कौन सहारा है ? येन जिस से अस्य इसके असवः प्राण सन्धार्यन्ते बचाये जाँय ? कतमया किस युक्त्या युक्ति से ? कतरेण किस प्रकारेण तरीके से ? केन किस अवष्टम्भेन अवलम्ब से ? कया किस प्रज्ञया बुद्धि से ? कतमेन किस समाश्वासनेन आश्वासन से अयं यह जीवेत् जीये इति एते इस प्रकार ये अन्ये च और दूसरे भी संकल्पाः संकल्प (विचार) मे मुझ विषण्णहृदयस्य दुःखित हृदय के (हृदय में) प्रादुरभूवन् उत्पन्न होते रहे।

कपिञ्जल का कामातुर पुण्डरीक को समझाना

सखे पुण्डरीक ! नैतद् अनुरूपं भवतः । क्षुद्रजन-क्षुण्णः एष मार्गः । धैर्यधना हि साधवः । किं यः कश्चित् प्राकृत इव विक्लवीभवस्तम् आत्मानं न रुणत्सि ? कुतस्तव अपूर्वोऽयम् अद्य इन्द्रियोपप्लवः ? येनासि एवं कृतः । क्व ते तद् धैर्यम् ? क्वाऽसौ इन्द्रियजयः ? क्व तद् वशित्वं चेतसः ? क्व सा प्रशान्तिः ? क्व तत् कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम् ? क्व सा सर्वविषय-निरुत्सुकता ? क्व ते गुरूपदेशाः ? क्व तानि श्रुतानि ? क्व ता वैराग्यबुद्धयः ? क्व तद् उपभोग-विद्वेषित्वम् ? क्व सा सुख-पराङ्मुखता ? क्वाऽसौ तपसि अभिनिवेशः ? क्व सा संयमिता ? क्व सा भोगानाम् उपरि अरुचिः ? क्व तद् यौवनानुशासनम् ?

सर्वथा विफला प्रज्ञा, निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासः, निरर्थकः संस्कारः, निरुपकारको गुरूपदेश-विवेकः, निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, निष्कारणं ज्ञानम् यदत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गैः कलुषीक्रियन्ते प्रमादैश्च अभिभूयन्ते ।

कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

सखे पुण्डरीक ! मित्र पुण्डरीक ! एतत् यह भवतः आपके अनुरूपं न योग्य नहीं है । एष यह मार्गः मार्ग क्षुद्रजन-क्षुण्णः नीच मनुष्यों द्वारा सेवित है । साधवः साधु पुरुष धैर्यधनाः धैर्य के धनी होते हैं । किं क्यों यः कश्चित् जो कोई प्राकृतः इव साधारण मनुष्य के समान विक्लवीभवन्तम् आकुल होते हुए आत्मानं अपने को न रुणत्सि ? नहीं रोकते हो ? अद्य आज तव तुम्हें कुतः कहाँ से अयं यह अपूर्वः अपूर्व इन्द्रियोपप्लवः इन्द्रियों में विकार हो गया है ? येन जिसके द्वारा एवं ऐसे कृतः असि ? कर दिये गये हो ? ते तुम्हारा तत् वह धैर्यं धैर्य क्व कहाँ ? असौ वह इन्द्रियजयः इन्द्रियों पर विजय क्व कहाँ ? चेतसः चित्त का तत् वह वशित्वम् वशीकरण क्व कहाँ ? सा वह प्रशान्तिः शान्ति क्व कहाँ ? तत् वह कुलक्रमागतं कुलक्रम से आया हुआ ब्रह्मचर्य्यं ब्रह्मचर्य क्व कहाँ ? क्व कहाँ सा वह सर्वविषय-निरुत्सुकता ? सब विषयों से निरुत्सुक रहने का स्वभाव ? क्व कहाँ ते वे गुरूपदेशाः गुरुओं के उपदेश ? तानि वे श्रुतानि ज्ञान क्व कहाँ गये ? ता वे वैराग्यबुद्धयः वैराग्य के विचार क्व कहाँ गये ? तत् वह उपभोग-द्वेषित्वम् भोग विलासों से विद्वेष का भाव क्व कहाँ गया ? सा वह सुख-पराङ्मुखता सुख से विमुख रहने की बातें क्व कहाँ गईं ? स वह तपसि तपस्या में अभिनिवेशः विशेष प्रेम क्व कहाँ गया ? सा वह संयमिता संयम क्व कहाँ गया ? सा वह भोगानाम् भोगों के उपरि ऊपर अरुचिः अरुचि क्व कहाँ ? तद् वह यौवनानुशासनम् यौवन के ऊपर अनुशासन क्व कहाँ ?

प्रज्ञा बुद्धि सर्वथा बिलकुल विफला निष्फल है, धर्मशास्त्राभ्यासः धर्मशास्त्रों का अभ्यास निर्गुणः निरर्थक है, संस्कारः संस्कार निरर्थकः व्यर्थ है, गुरुपदेश-विवेकः गुरु के उपदेश का विवेक निरुपकारकः अनुपयुक्त है, प्रबुद्धता प्रबोध निष्प्रयोजन प्रयोजन हीन है, ज्ञानं ज्ञान निष्कारणं निरुपयोगी है यत् यदि अत्र यहाँ भवादृशाः आप जैसे लोग अपि भी रागाभिषङ्गैः अनुराग के स्पर्श से कलुषीक्रियन्ते मलिन हो जाते हैं च और प्रमादैः प्रमादों से अभिभूयन्ते अभिभूत हो जाते हैं।

चन्द्रापीड़ की चिन्ता

किं करोमि एकाकी ? वैशम्पायनः अपि असन्निहितः पार्श्व मे। किं करोमि ? कं पृच्छामि ? केन सह निरूपयामि ? को मे समुपदिशतु ? को वा अपरो मे निश्चयाधानं करोतु ? कस्य अपरस्य वा विवेकिनी प्रज्ञा ? कस्य वा अन्यस्य श्रुतं श्रोतव्यं वा ? को वा अपरो वेत्ता वक्तुं ? कस्य वा अपरस्य मयि असाधारणः स्नेहः ? केन वा अपरेण सह समानदुःखो भवामि ? को वा अपरो मयि दुःखिते दुःखी ? सुखिते सुखी वा ? को वा अपरो रहसि आवेदनस्थानम् ? कस्य अपरस्य उपरि कर्तव्यभारम् अवक्षिप्य निर्वृतात्मा भवामि ? कस्य वा अपरस्य मत्कार्ये पर्याकुलता ?

कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

एकाकी अकेला किं क्या करोमि मैं करूँ ? वैशम्पायनः अपि वैशम्पायन भी मे मेरे पार्श्वे पास असन्निहितः निकट नहीं ? किं करोमि क्या करूँ ? कं पृच्छामि किससे पूछूँ ? केन सह किसके साथ निरूपयामि बातें करूँ ? कः कौन मे मुझे समुपदिशतु उपदेश दे, कः कौन अपरः दूसरा मे मुझे निश्चयाधानं निश्चय का निर्देश करोतु करे ? कस्य किस अपरस्य दूसरे (व्यक्ति) की प्रज्ञा बुद्धि विवेकिनी उचित अनुचित के विवेक से युक्त है ? कस्य किस अन्यस्य दूसरे व्यक्ति का

श्रुतं शास्त्रीय ज्ञान श्रोतव्यं सुनने लायक है ? कः कौन अन्यः दूसरा वक्तुं वक्तुं कहना वेत्ता जानता है ? कस्य किस अपरस्य दूसरे का मयि मुझ पर असाधारणः असामान्य स्नेहः स्नेह है ? केन किस अपरेण दूसरे के साथ समानदुःखः समानदुःखो भवामि होऊँ ? कः कौन अपरः दूसरा मयि मेरे दुःखिते दुःखी होने पर दुःखी दुःखी होगा ? वा अथवा सुखिते सुखी होने पर सुखी सुखी होगा ? कः कौन अपरः दूसरा रहसि एकान्त में आवेदनस्थानम् मेरे लिये निवेदन करने योग्य है ? कस्य किस अपरस्य दूसरे के उपरि ऊपर कर्तव्यभारम् कर्तव्य का भार अवक्षिप्य देकर निवृतात्मा निश्चिन्त भवामि होऊँ ? कस्य किस अपरस्य दूसरे की मत्कार्ये मेरे काम में पर्याकुलता व्याकुलता होगी ?

एक पुस्तक के सम्बन्ध में प्रश्न

सखे ! क एष तल्पोपरिष्टात् पुस्तकः ? किमिति बद्ध एवास्ते ? किं किल न उन्मुच्य वाच्यते ? कथ्यताम्। किमिह प्रमाणशास्त्रोपाङ्गप्रकारः ? किमुत साहित्यभागः ? किम् आगमविशेषः ? किं पौराणिको भेदः ?

—उदयसुन्दरीकथा

सखे ! मित्र ! कः कौन एषः यह तल्पोपरिष्टात् बिछौने के ऊपर पुस्तकः पुस्तक (है) ? किमिति क्यों बद्ध एव बँधा ही आस्ते रखा है ? उन्मुच्य खोलकर किं न क्यों नहीं वाच्यते बाँचा जाता है—पढ़ा जाता है ? कथ्यताम् कहिये तो। इह इसमें किं क्या प्रमाणाशास्त्रोपाङ्ग-प्रकारः ? प्रमाण शास्त्रों के उपाङ्गों की बातें हैं ? उत अथवा किम् क्या साहित्यभागः साहित्य का अङ्ग है ? किम् क्या आगमविशेषः कोई आगम शास्त्र का विशेष अङ्ग है ? किं क्या पौराणिकः पुराणों का भेदः भेद है ?



परिशिष्ट

सत्य और धर्म की महिमा

(क) सत्येन वायुरावाति, सत्येनादित्यो रोचते दिवि, सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति।

(ख) धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पापमपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति।

—नारायणोपनिषद् ७९.

(क) सत्येन सत्य से वायुः वायु आवाति बहता है, सत्येन सत्य से दिवि आकाश में आदित्यः सूर्य रोचते चमकता है, सत्यं सत्य वाचः वाणी की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा है, सत्ये सत्य में सर्वं सब कुछ प्रतिष्ठितं प्रतिष्ठित है, तस्मात् इसलिये सत्यं सत्य को परमं श्रेष्ठ वदन्ति कहते हैं।

(ख) धर्मः, धर्म विश्वस्य समस्त जगतः जगत की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा है, लोके लोक में प्रजा लोग धर्मिष्ठं उपसर्पन्ति धार्मिक पुरुष के समीप जाते हैं, धर्मे धर्म के उपर ही सर्वं सब कुछ प्रतिष्ठितं प्रतिष्ठित है, तस्मात् इसलिये धर्मं धर्म को परमं श्रेष्ठ वदन्ति कहते हैं।

एक मुमुक्षु शिष्य का आचार्य से अपने मोक्ष के सम्बन्ध में प्रश्न

सुखमासीनं ब्राह्मणं ब्रह्मनिष्ठं कश्चिद् ब्रह्मचारी जन्म-मरण-लक्षणात् संसारात् निर्विण्णो मुमुक्षुः विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ—भग-

वन्, कथमहं संसारात् मोक्षिष्ये शरीरेन्द्रिय-विषय-वेदनावान् ? जागरिते दुःखमनुभवामि, तथा स्वप्नेऽनुभवामि च पुनः पुनः सुषुप्ति-प्रतिपत्त्या विश्रम्य विश्रम्य। किम् अयमेव मम स्वभावः ? किं वा अन्यस्वभावस्य सतो नैमित्तिक इति ? यदि स्वभावः न मे मोक्षाशा, स्वभावस्य अवर्जनीयत्वात्। अथ नैमित्तिकः, निमित्त-परिहारे स्यात् मोक्षोपपत्तिः।

तं गुरुरुवाच—शृणु वत्स ! न तवायं स्वभावः किन्तु नैमित्तिकः।

—उपदेशसाहस्री ४५–४६

सुखं सुखपूर्वक आसीनं बैठे हुए ब्रह्मनिष्ठं ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणं ब्राह्मण के पास कश्चित् किसी ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी ने जन्म-मरण-लक्षणात् जन्म और मरण स्वरूप वाले संसारात् संसार से निर्विण्णः दुखी हुआ (अत एव) मुमुक्षुः मोक्ष का इच्छुक हो विधिवत् विधिपूर्वक उपसन्नः समीप में आकर पप्रच्छ पूछा—भगवन् ! महाराज ! शरीरेन्द्रिय-विषय-वेदनावान् शरीर, इन्द्रिय तथा विषयों के ज्ञान से युक्त अहं मैं कथं किस प्रकार संसारात् संसार से मोक्षिष्ये मुक्त होऊँगा ? जागरिते जाग्रत अवस्था में दुःखम् अनुभवामि दुःख का अनुभव करता हूँ तथा तथा स्वप्ने स्वप्न में (दुःख का) अनुभवामि अनुभव करता हूँ च और सुषुप्ति-प्रतिपत्त्या (बीच में) सुषुप्ति अवस्था के आ जाने के कारण विश्रम्य विश्रम्य रुक रुक कर पुनः पुनः फिर बार बार (दुःख का अनुभव करता हूँ)। (तो फिर) किम् क्या अयम् एव यही मम मेरा स्वभावः स्वभाव है ? किं वा अथवा अन्यस्वभावस्य सतः मुझ दूसरे स्वभाव वाले का (यह) नैमित्तिकः किसी निमित्त के कारण बदला हुआ स्वभाव है ? यदि स्वभावः यदि यही मेरा वास्तविक स्वभाव है (तो) मे मुझे न मोक्षाशा मोक्ष की कोई आशा नहीं, स्वभावस्य स्वभाव के अवर्जनीयत्वात् न छूट सकने के कारण। अथ

और यदि नैमित्तिकः नैमित्तिक हैं (तो) निमित्त-परिहारे निमित्त के दूर होने पर मोक्षोपपत्तिः मोक्ष की प्राप्ति स्यात् हो सकती है।

तं उससे गुरुः उवाच गुरु ने कहा—शृणु वत्स ! सुनो वत्स ! अयं यह तव तुम्हारा (वास्तविक) स्वभावः न स्वभाव नहीं है किन्तु अपितु नैमित्तिकः नैमित्तिक है।

अधर्म ही जलवायु के दूषित होने तथा देश के व्यापक विध्वंस का कारण

यदा वै देश-नगर-निगम-जनपद-प्रधाना धर्ममुत्क्रम्य अधर्मेण प्रजां प्रवर्तयन्ति तदा आश्रितोपाश्रिताः पौरजानपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्मम् अभिवर्धयन्ति, ततः सोऽधर्मः प्रसभं धर्ममन्तधत्ते, ततस्ते अन्तर्हितधर्माणो देवताभिरपि त्यज्यन्ते। तेषां तथा अन्तर्हितधर्मणाम् अधर्मप्रधानानाम् अपक्रान्तदेवतानाम् ऋतवः व्यापद्यन्ते, तेन न आपो यथाकालं देवो वर्षति, न वा वर्षति, विकृतं वा वर्षति, वाता न सम्यग् अभिवान्ति, क्षितिः व्यापद्यते, सालिलानि उपशुष्यन्ति, ओषधयः स्वभावं परिहाय आपद्यन्ते विकृतिम्, तत उद्ध्वंसन्ते जनपदाः स्पर्शाभ्यवहार्यदोषात्।

—चरकसंहिता, विमानस्थानम्, ३, २४,

यदा जब देश-नगर-निगम-जनपद-प्रधानाः देशों, नगरों, निगमों तथा जनपदों के प्रधान पुरुष (जननायक अथवा शासक) धर्मम् धर्म का उत्क्रम्य उल्लंघन कर अधर्मेण अधर्म से प्रजां प्रजा का प्रवर्तयन्ति शासन अथवा संचालन करते हैं तदा तब आश्रितोपाश्रिताः आश्रित एवं उपाश्रित (जन अथवा कर्मचारी) पौरजानपदाः पुर और जनपद के निवासी च तथा व्यवहारोपजीविनः व्यपहारजीवी लोग तम् उस अधर्मं अधर्म को अभिवर्धयन्ति बढ़ाते हैं, ततः तब सः वह अधर्मः

वन्, कथमहं संसारात् मोक्षिष्ये शरीरेन्द्रिय-विषय-वेदनावान् ? जागरिते दुःखमनुभवामि, तथा स्वप्नेऽनुभवामि च पुनः पुनः सुषुप्ति-प्रतिपत्त्या विश्रम्य विश्रम्य। किम् अयमेव मम स्वभावः ? किं वा अन्यस्वभावस्य सतो नैमित्तिक इति ? यदि स्वभावः न मे मोक्षाशा, स्वभावस्य अवर्जनीयत्वात्। अथ नैमित्तिकः, निमित्त-परिहारे स्यात् मोक्षोपपत्तिः।

तं गुरुरुवाच—शृणु वत्स ! न तवायं स्वभावः किन्तु नैमित्तिकः।

—उपदेशसाहस्री ४५–४६

सुखं सुखपूर्वक आसीनं बैठे हुए ब्रह्मनिष्ठं ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणं ब्राह्मण के पास कश्चित् किसी ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी ने जन्म-मरण-लक्षणात् जन्म और मरण स्वरूप वाले संसारात् संसार से निर्विण्णः दुखी हुआ (अत एव) मुमुक्षुः मोक्ष का इच्छुक हो विधिवत् विधिपूर्वक उपसन्नः समीप में आकर पप्रच्छ पूछा—भगवन् ! महाराज ! शरीरेन्द्रिय-विषय-वेदनावान् शरीर, इन्द्रिय तथा विषयों के ज्ञान से युक्त अहं मैं कथं किस प्रकार संसारात् संसार से मोक्षिष्ये मुक्त होऊँगा ? जागरिते जाग्रत अवस्था में दुःखम् अनुभवामि दुःख का अनुभव करता हूँ तथा तथा स्वप्ने स्वप्न में (दुःख का) अनुभवामि अनुभव करता हूँ च और सुषुप्ति-प्रतिपत्त्या (बीच में) सुषुप्ति अवस्था के आ जाने के कारण विश्रम्य विश्रम्य रुक रुक कर पुनः पुनः फिर बार बार (दुःख का अनुभव करता हूँ)। (तो फिर) किम् क्या अयम् एव यही मम मेरा स्वभावः स्वभाव है ? किं वा अथवा अन्यस्वभावस्य सतः मुझ दूसरे स्वभाव वाले का (यह) नैमित्तिकः किसी निमित्त के कारण बदला हुआ स्वभाव है ? यदि स्वभावः यदि यही मेरा वास्तविक स्वभाव है (तो) मे मुझे न मोक्षाशा मोक्ष की कोई आशा नहीं, स्वभावस्य स्वभाव के अवर्जनीयत्वात् न छूट सकने के कारण। अथ

और यदि नैमित्तिकः नैमित्तिक हैं (तो) निमित्त-परिहारे निमित्त के दूर होने पर मोक्षोपपत्तिः मोक्ष की प्राप्ति स्यात् हो सकती है।

तं उससे गुरुः उवाच गुरु ने कहा—शृणु वत्स ! सुनो वत्स ! अयं यह तव तुम्हारा (वास्तविक) स्वभावः न स्वभाव नहीं है किन्तु अपितु नैमित्तिकः नैमित्तिक है।

अधर्म ही जलवायु के दूषित होने तथा देश के व्यापक विध्वंस का कारण

यदा वै देश-नगर-निगम-जनपद-प्रधाना धर्ममुत्क्रम्य अधर्मेण प्रजां प्रवर्तयन्ति तदा आश्रितोपाश्रिताः पौरजानपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्मम् अभिवर्धयन्ति, ततः सोऽधर्मः प्रसभं धर्मभन्तधत्ते, ततस्ते अन्तर्हितधर्माणो देवताभिरपि त्यज्यन्ते। तेषां तथा अन्तर्हितधर्मणाम् अधर्मप्रधानानाम् अपक्रान्तदेवतानाम् ऋतवः व्यापद्यन्ते, तेन न आपो यथाकालं देवो वर्षति, न वा वर्षति, विकृतं वा वर्षति, वाता न सम्यग् अभिवान्ति, क्षितिः व्यापद्यते, सलिलानि उपशुष्यन्ति, ओषधयः स्वभावं परिहाय आपद्यन्ते विकृतिम्, तत उद्ध्वंसन्ते जनपदाः स्पर्शाभ्यवहार्यदोषात्।

—चरकसंहिता, विमानस्थानम्, ३, २४,

यदा जत्र देश-नगर-निगम-जनपद-प्रधानाः देशों, नगरों, निगमों तथा जनपदों के प्रधान पुरुष (जननायक अथवा शासक) धर्मम् धर्म का उत्क्रम्य उल्लंघन कर अधर्मेण अधर्म से प्रजां प्रजा का प्रवर्तयन्ति शासन अथवा संचालन करते हैं तदा तत्र आश्रितोपाश्रिताः आश्रित एवं उपाश्रित (जन अथवा कर्मचारी) पौरजानपदाः पुर और जनपद के निवासी च तथा व्यवहारोपजीविनः व्यवहारजीवी लोग तम् उस अधर्मं अधर्म को अभिवर्धयन्ति बढ़ाते हैं, ततः तत्र सः वह अधर्मः

अधर्मं प्रसभं हठात् धर्मम् धर्म को अन्तर्धत्ते दबा देता है, ततः तब ते वे अन्तर्हितधर्माणः विनष्ट धर्मवाले लोग देवताभिः अपि देवताओं से भी त्यज्यन्ते छोड़ दिये जाते हैं। तेषां उन तथा उस प्रकार अन्तर्हितधर्मणाम् अन्तर्हित धर्मवाले, अधर्मप्रधानानाम् अधर्म प्रधान (तथा) अपक्रान्तदेवतानाम् देवताओं से परित्यक्त (लोगों की) ऋतवः ऋतुयें व्यापद्यन्ते बिगड़ जाती हैं। तेन इस कारण देवः इन्द्र यथाकालं समय पर आपः पानी न वर्षति नहीं बरसता है, वा अथवा न वर्षति बरसता ही नहीं है, वा अथवा विकृतं विकृतरूप में वर्षति बरसता है; (इसी प्रकार) वाताः हवायें सम्यक् अच्छी तरह न अभिवान्ति नहीं बहती हैं, क्षितिः जमीन व्यापद्यते बिगड़ जाती है, सलिलानि पानी उपशुष्यन्ति सूख जाता है। ओषधयः ओषधियाँ स्वभावं स्वभाव को परिहाय छोड़कर विकृतिम् विकार को आपद्यन्ते प्राप्त हो जाती हैं, ततः तब (इन कारणों से) जनपदाः देश स्पर्शाभ्यवहार्य-दोषात् स्पर्श तथा भक्ष्यपदार्थों के दोष से उद्ध्वंसन्ते उद्ध्वस्त, विनष्ट हो जाते हैं।

स्थूल और सूक्ष्म सब कुछ परमेश्वर के ही आश्रित हैं

पृथिवी च पृथिवीमात्रा च, आपश्च आपोमात्रा च, तेजश्च तेजोमात्रा च, वायुश्च वायुमात्रा च, आकाशश्च आकाशमात्रा च, चक्षुश्च द्रष्टव्यं च, श्रोत्रं च श्रोतव्यं च, घ्राणं च घ्रातव्यं च, रसश्च रसयितव्यं च, त्वक् च स्पर्शयितव्यं च, वाक् च वक्तव्यं च, हस्तौ च आदातव्यं च, उपस्थश्च आनन्दयितव्यं च, पायुश्च विसर्जयितव्यं च, पादौ च गन्तव्यं च, मनश्च मन्तव्यं च, बुद्धिश्च बोद्धव्यं च, अहङ्कारश्च अहङ्कर्तव्यं च, चित्तं च चेतयितव्यं च, तेजश्च विद्योतयितव्यं च, प्राणाश्च विधारयितव्यं च।

—प्रश्नोपनिषद् ४. ८.

पृथिवी च पृथिवी और पृथिवीमात्रा च पृथिवी की तन्मात्रा (सूक्ष्म गन्ध भी), आपः च जल और आपोमात्रा च जल की तन्मात्रा (रस भी), तेजः च तेज और तेजोमात्रा च तेज की तन्मात्रा (रूप) भी, वायुः च वायु और वायुमात्रा च वायु की तन्मात्रा (स्पर्श) भी, आकाशः च आकाश और आकाशमात्रा च आकाश की तन्मात्रा (शब्द) भी, चक्षुः च नेत्र इन्द्रिय और द्रष्टव्यं च देखने में आनेवाली वस्तु भी, श्रोत्रं च श्रोत्र इन्द्रिय और श्रोतव्यं च सुनने में आनेवाली वस्तु भी, घ्राणं च घ्राणेन्द्रिय और घ्रातव्यं च सूंघने में आनेवाली वस्तु भी, रसः च रस और रसना इन्द्रिय और रसयितव्यं च रस लेने योग्य वस्तु भी, त्वक् च त्वक् इन्द्रिय और स्पर्शयितव्यं च स्पर्श में आनेवाली वस्तु भी, वाक् च वाक् इन्द्रिय और वक्तव्यं च बोलने में आने वाला शब्द भी, हस्तौ च दोनों हाथ और आदातव्यं च ग्रहण करने योग्य वस्तु भी, उपस्थः उपस्थ इन्द्रिय और आनन्दयितव्यं च आनन्द लेने योग्य विषय भी, पायुः च गुदा इन्द्रिय और विसर्जयितव्यं च परित्याग करने योग्य वस्तु भी, पादौ च दोनों चरण और गन्तव्यं च गन्तव्य स्थान भी, मनः च मन और मन्तव्यं च मनन में आने वाले विषय भी, बुद्धिः च बुद्धि और बोद्धव्यं च बुद्धि द्वारा समझने योग्य विषय भी, अहङ्कारः च अहंकार और अहंकर्तव्यं च अहंकार का विषय भी, चित्तं च चित्त और चेतयितव्यं च चिन्तन में आने वाली वस्तु भी, तेजः च तेज (प्रभाव) और विद्योतयितव्यं च उसका विद्योतनीय विषय भी, प्राणः च प्राण और विधारयितव्यं च उसके द्वारा धारण किये जाने वाले पदार्थ भी (ये सब के सब परमात्मा के ही आश्रित हैं)।

राज्य सुख से विरक्त बुद्ध को बाहर जाने से बचाने के लिये राजा शुद्धोदन द्वारा विशेष प्रबन्ध

राजा शुद्धोदनो बोधिसत्त्वस्य इमामेवंरूपां सञ्चोदनां दृष्ट्वा

भूयस्या मात्रया बोधिसत्त्वस्य परिरक्षणार्थं प्राकारान् मापयते स्म। परिखाः खानयति स्म। द्वाराणि च गाढानि कारयति स्म। आरक्षान् स्थापयति स्म। शूरान् नोदयति स्म। वाहनानि योजयति स्म। वर्म्माणि ग्राहयति स्म। चतुर्षु नगरद्वारेषु शृङ्गाटकेषु चतुरो महासेनाव्यूहान् स्थापयति स्म बोधिसत्त्वस्य परिरक्षणार्थम्।

—ललितविस्तरः १४

राजा शुद्धोदनः राजा शुद्धोदन ने बोधिसत्त्वस्य बुद्ध की एवंरूपां ऐसी इमां इस सञ्चोदनां प्रवृत्ति को दृष्ट्वा देखकर भूयस्या विशेष मात्रया रूप से बोधिसत्त्वस्य बुद्ध की परिरक्षणार्थं रक्षा के लिये प्राकारान् परकोटों को मापयते स्म बनवाया। परिखाः खाइयों को खानयति स्म खनवाया। द्वाराणि दरवाजों को गाढानि मजबूत कारयति स्म बनवाया। आरक्षान् रखवालों को स्थापयति स्म रखवाया। शूरान् वीरों को नोदयति स्म प्रेरित किया। वाहनानि सवारियों को योजयति स्म जुडवाया। वर्म्माणि कवचों को ग्राहयति स्म दिलवाया। चतुर्षु चारो नगरद्वारेषु नगर के द्वारों पर (तथा) शृङ्गाटकेषु चौराहों पर महासेना-व्यूहान् बड़ी-बड़ी सेनाओं के मोर्चे स्थापयति स्म स्थापित किया बोधिसत्त्वस्य बुद्ध की परिरक्षणार्थम् विशेष रक्षा के लिये।

समावर्तन के समय आचार्य का शिष्य को उपदेश

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यानि अनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यानि अस्माकं सुचरितानि, तानि त्वया उपास्यानि नो इतराणि।

—तैत्तिरीय उपनिषद् १-११।

सत्यं वद सत्य बोलो। धर्मं चर धर्म का आचरण करो। स्वाध्यायात् स्वाध्याय से मा प्रमदः कभी प्रमाद मत करो। आचार्याय आचार्य के लिये प्रियं धनं प्रिय धन आहृत्य लाकर (अर्थात् गुरुदक्षिणा के रूप में देकर और फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर) प्रजातन्तुं सन्तति परम्परा को मा व्यवच्छेत्सीः, उच्छिन्न मत करो। सत्यात् सत्य बोलने से न प्रमदितव्यम् प्रमाद नहीं करना चाहिये। धर्मात् धर्माचरण से न प्रमदितव्यम् प्रमाद नहीं करना चाहिये। कुशलात् शुभ कार्यों से न प्रमदितव्यम् प्रमाद नहीं करना चाहिये। भूत्यै उन्नति के साधन-सम्पादन से न प्रमदितव्यम् प्रमाद नहीं करना चाहिये। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां वेदों के पढ़ने और पढ़ाने से न प्रमदितव्यम् प्रमाद नहीं करना चाहिये। देव-पितृ-कार्याभ्यां देवकार्य एवं पितृकार्य से न प्रमदितव्यम् प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मातृदेवः भव माता को देवस्वरूप मानने वाले बनो। पितृदेवः भव पिता को देवस्वरूप मानने वाले बनो। आचार्यदेवः भव आचार्य को देवस्वरूप मानने वाले बनो। अतिथिदेवः भव अतिथि को देवस्वरूप मानने वाले बनो। यानि जो अनवद्यानि निर्दोष कर्माणि कर्म हैं तानि उन्हीं का सेवितव्यानि सेवन करना चाहिये, इतराणि न अन्य सदोष कर्मों का नहीं। यानि जो अस्माकं हम लोगों के सुचरितानि अच्छे आचरण हैं तानि उन्हीं का त्वया तुम्हें उपास्यानि सेवन करना चाहिये। नो इतराणि अन्य बुरे आचरणों का नहीं।

वल की महत्ता

शतं विज्ञानवतामेको वलवान् आकम्पयते। स यदा वली भवति अथ उत्थाता भवति, उत्तिष्ठन् परिचरिता भवति, परिचरन् उपसत्ता भवति, उपसीदन् द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, वोद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति।

वलेन वै पृथिवी तिष्ठति, बलेन अन्तरिक्षम्, वलेन द्यौः, बलेन पर्वताः, वलेन देवमनुष्याः, वलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदानि आकीट-पतङ्ग-पिपीलिकं वलेन लोकस्तिष्ठति। वलमुपास्स्व इति।

—छान्दोग्य उपनिषद् ७, ८

विज्ञानवताम् विज्ञानियों के शतं शतक को (अर्थात् सौ विज्ञानियों को) एकः एक बलवान् वलवान् पुरुष आकम्पयते हिला देता है।

(जिस समय) स यह मनुष्य वली भवति बलवान् होता है अथ तभी उत्थाता उठने वाला भवति होता है, उत्तिष्ठन् उठने वाला होकर परिचरिता भवति परिचर्या करने वाला होता है। परिचरन् परिचर्या करता हुआ उपसत्ता समीप में पहुँचने वाला भवति होता है, उपसीदन् समीप में पहुँचने पर ही द्रष्टा भवति दर्शन करने वाला होता है, श्रोता भवति सुनने वाला होता है, मन्ता भवति मनन करने वाला होता है, बोद्धा भवति समझने वाला होता है, कर्ता भवति करने वाला होता है (तथा) विज्ञाता भवति विज्ञाता होता है।

वलेन वै वल से ही पृथिवी तिष्ठति पृथिवी स्थित है, बलेन वल से ही अन्तरिक्षम् अन्तरिक्ष स्थित है, बलेन बल से ही द्यौः द्युलोक स्थित है, वलेन वल से ही पर्वताः पर्वत स्थित है, बलेन बल से ही देवमनुष्याः देवता और मनुष्य स्थित हैं, बलेन वल से ही पशवः पशु,

च और वयांसि पक्षी, च और तृणवनस्पतयः तृण और वनस्पति, श्वापदानि श्वापद (तथा) आकीट-पतङ्ग-पिपीलिकं कीट पतङ्ग और चीटीं पर्यन्त समस्त प्राणी बलेन तिष्ठति बल से स्थित हैं। इस लिये बलम् उपास्स्व बल की उपासना करो।

महाश्वेता को देखकर पुण्डरीक के कामविह्वल हो जाने का महाश्वेता द्वारा वर्णन

अथ कृतप्रणामायां मयि दुर्लङ्घ्य-शासनतया भगवतो मनोभुवः, मद-जननतया च मधुमासस्य, अतिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्य, अविनय-बहुलतया च अभिनव-यौवनस्य, चञ्चल-प्रकृतितया च इन्द्रियाणाम्, दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणाम्, चपलतया च मनोवृत्तेः तथा भवितव्यया च तस्य वस्तुनः, किं बहुना मम भाग्यदौरात्म्याद् अस्य च क्लेशस्य विहितत्वात् तमपि मद्विकार-दर्शनापहृत-धैर्यं प्रदोषमिव पवनः तरलताम् अनयत् अनङ्गः।

—कादम्बरी पूर्वार्द्ध

अथ इसके बाद मयि मेरे कृतप्रणामायां प्रणाम कर लेने पर भगवतः मनोभुवः भगवान् कामदेव के दुर्लङ्घ्य-शासनतया दुर्लङ्घ्य। शासन होने के कारण, मधुमासस्य चैत्र मास के मद-जननतया मद-जनक होने के कारण, तस्य प्रदेस्य उस प्रदेश के अतिरमणीयतया अत्यन्त रमणीय होने के कारण, अभिनव-यौवनस्य नवीन यौवन के अविनय-बहुलतया अविनयबहुल होने के कारण, इन्द्रियाणाम् इन्द्रियों के चञ्चलप्रकृतितया चञ्चलस्वभाव होने के कारण, विषयाभिलाषाणाम् विषयसम्बन्धी अभिलाषाओं के दुर्निवारतया दुर्निवार होने के कारण, मनोवृत्तेः मनोवृत्ति के चपलतया चपल होने के कारण, तथा तथा तस्य वस्तुनः उस बात के भवितव्यतया अवश्यंभावी होने के कारण,

(अथवा) किं बहुना अधिक कहने से क्या ? मम मेरे भाग्यदौरात्म्यात् भाग्य की दुष्टता से, अस्य च और इस मुनि को क्लेशस्य (इस) क्लेश के विहितत्वात् विहित होने के कारण मद्विकार-दर्शनापहृत-धैर्यं मेरे विकार के देखने से विनष्ट धैर्य वाले तम् अपि उस पुण्डरीक का भी अनङ्गः कामदेव ने, पवनः हवा प्रदीपम् इव दीपक को जैसे, तरलताम् अनयत् तरल बना दिया अर्थात् उसमें घबड़ाहट ला दी।

महाश्वेता को देखकर चन्द्रापीड का प्रभावित होना

चन्द्रापीडस्तु प्रथममेव तस्या रूपेण, विनयेन, दाक्षिण्येन च, मधुरालापतया च, निःसङ्गतया च, अतितपस्वितया च, प्रशान्तत्वेन च, निरभिमानतया च, महानुभावत्वेन च, शुचितया च उपारूढगौरवः अभूत्।

—कादम्बरी, पूर्वार्द्ध

चन्द्रापीडः तु चन्द्रापीड तो प्रथमम् एव पहले ही तस्याः उसके रूपेण रूप से, विनयेन विनय से, दाक्षिण्येन दाक्षिण्य से, मधुरालापतया मधुरभाषिता से, निःसङ्गतया आसक्तिहीनता से, अतितपस्वितया अत्यन्त तपस्विता से, प्रशान्तत्वेन प्रशान्तभाव से, निरभिमानतया अभिमानहीनता से, महानुभावतया महानुभावता से च तथा शुचितया पवित्रता से (उसके प्रति) उपारूढगौरवः गौरवभाव से पूर्ण युक्त अभूत् हो गये।

लोगों में लोभजनित नैतिक पतन का वर्णन

आधुनिकेषु च जनेषु पितापुत्रौ, माता-पुत्र्यौ, श्वश्रू-वध्वौ, जायापती, भ्रातरौ, स्वसारौ, स्वसा-भ्रातरौ, मातुल-भागिनेयौ, श्वसुर-जामातरौ, सखायौ, हन्त ? गुरु-शिष्यावपि, स्वामि-सेवकौ, सम्बन्धि-बान्धवाश्च सर्वे इमे तिरस्कृत-सौहार्दाः कुटिलप्रकृतयः



कूटव्यवहाराः काकिण्यर्थेऽपि मिथो विरुद्ध्य वैरायमाणाः स्वजनं घातयन्तो घ्नन्तश्च दृश्यन्ते ।

—वासुदेवरसानन्दः

आधुनिकेषु आजकल के जनेषु लोगों में पितापुत्रौ पिता और पुत्र, माता-पुत्र्यौ माता और पुत्री, श्वश्रू-वध्वौ सास और पतोहू, जायापती स्त्री और पति, भ्रातरौ भाई भाई, स्वसारौ बहन बहन, स्वसा-भ्रातरौ बहन और भाई, मातुल-भागिनेयौ मामा और भान्जे, श्वसुर-जामातरौ ससुर और दामाद, सखायौ मित्र मित्र, हन्त ! आश्चर्य ! गुरु-शिष्यौ अपि गुरु और शिष्य भी, स्वामि-सेवकौ स्वामी और सेवक च तथा सम्बन्धि-बान्धवाः सम्बन्धी और भाई-बन्धु सर्वे इमे सभी ये तिरस्कृत-सौहार्दाः सौहार्द का तिरस्कार कर, कुटिल-प्रकृतयः कुटिल स्वभाव हो, कूटव्यवहाराः कपटपूर्ण व्यवहार करते हुए काकिण्यर्थे अपि कौड़ी के लिये भी मिथः आपस में विरुद्ध्य विरोध कर वैरायमाणाः वैर करते हुये स्वजनं अपने आदमी की घातयन्तः हत्या कराते हुए (तथा स्वयं भी) घ्नन्तः हत्या करते हुए दृश्यन्ते दीखते हैं ।

वासवदत्ता की प्रियसखी कलावती द्वारा कन्दर्पकेतु से वासवदत्ता की विरहवेदना का वर्णन

आर्यपुत्र ! नाऽयं विश्रम्भकथाया अवसरः, ततो लघुतरमेव अभिधीयसे । त्वत्कृते याऽनया वेदना अनुभूता सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मायते लिपिकरः, भुजगराजायते लेखकः, तदा किमपि कथमपि अनेकैः युगसहस्रैः अभिलिख्यते कथ्यते वा ।

—वासवदत्ता

आर्यपुत्र ! महाराज ! अयं यह विश्रम्भकथायाः विश्रम्भपूर्वक बातें करने का अवसरः न अवसर नहीं है। ततः इसलिये लघुतरम् एव बहुत शीघ्रता से ही अभिधीयसे तुममे मैं कह रही हूँ। त्वत्कृते तुम्हारे लिये अनया इसने या वेदना जिस वेदना का अनुभूता अनुभव किया सा वह वेदना यदि नभः यदि आकाश पत्रायते कागज हो जाय, सागरः समुद्र मेलानन्दायते दावात हो जाय, लिपिकरः लेखक ब्रह्मायते ब्रह्मा हो जाय तथा लेखकः कलम भुजगराजायते शेष हो जाय तदा तत्र किमपि थोड़ा बहुत कथमपि किसी प्रकार अनेकैः अनेक युगसहस्रैः हजार युगों में अभिलिख्यते लिखी जा सकती है कथ्यते वा अथवा कही जा सकती है।

स्त्रियों के कुछ कर्त्तव्य एवं ज्ञातव्य विषय

सावत्सरिकमायं संख्याय तदनुरूपं व्ययं कुर्यात्। भोजनाऽवशिष्टात् गोरसात् सारग्रहणम्, तथा तैलगुड़योः, कार्पासस्य च सूत्रकर्तनम्, सूत्रस्य वानम्, शिक्य-रज्जु-पाश-वल्कल-संग्रहणम्, कुट्टन-कण्डनावेक्षणम्, आचाम-मण्ड-तुष-कण-कुट्यङ्गाराणामुपयोजनम्, भृत्य-वेतन-भरणज्ञानम्, वाहन-विधि-योगाः, मेष-कुकुट-लावक-शुक-शारिका-परभृत-मयूर-वानर-मृगाणामवेक्षणम्, दैवसिकाय-व्यय-पिण्डीकरणम् इति च विद्यात्।

—कामसूत्रम्, च० अध्याय, प्र० अधि०

सांवत्सरिकम् सालाना आयं आमदनी का संख्याय हिसाब लगाकर तदनुकूलं उसके अनुकूल व्ययं खर्च कुर्यात् करे। (तथा) भोजनावशिष्टात् भोजन करने से बचे हुए गोरसात् दूध दही से सारग्रहणम् मक्खन घी आदि निकालना, तथा तैलगुड़योः उसी प्रकार तेल और गुड़ का भी संग्रह करना, कार्पासस्य च और कपास का सूत्रकर्तनम् सूत कातना, सूत्रस्य वानम् सूत का कपड़ा बुनना,

शिक्य-रज्जु-पाश-वल्कल-संग्रहणम् शिक्य (छींका), रज्जु (डोर), पाश (पास) तथा वल्कल (बोकला) आदि का बनाना तथा संग्रह करना, कुट्टन-कण्डनावेक्षणम् कूटने छाटने आदि की विधि जानना और उसकी देखभाल करना, आचाम-मण्ड-तुष-कण-कुट्यङ्गाराणाम् उपयोजनम् आचाम (पीने लायक वस्तु), मण्ड (मांड), तुष (भूसी), कण (खुद्दी), कुटी (कुट्टी) तथा अङ्गार (कोयला) इत्यादि का भिन्न-भिन्न कामों में उपयोग करना, भृत्य-वेतन-भरण-ज्ञानम् , नौकरों को वेतन देने और उनके भरण पोषण की विधि जानना, वाहनविधियोगाः सवारी रखने तथा उनकी मरम्मत आदि का विधि जानना, मेष-कुक्कुट-लावक-शुक-शारिका-परभृत-मयूर-वानर-मृगाणाम् अवेक्षणम्, मेष (भेड़), कुक्कुट (मुर्गा), लावक (बटेर), शुक (सुग्गा), सारिका (मैना), परभृत (कबूतर), मयूर (मोर), वानर तथा मृग आदि (जो घर में पाले गये हों) की देखभाल करना (तथा) दैवसिकाय-व्यय-पिण्डीकरणम् प्रतिदिन की आमदनी और खर्च को जोड़ना इति च यह भी विद्यात् जाने।

वस्तुस्वभाव के कारणों की अज्ञेयता

उदयति एव पीयूष-मयूखे जलनिधिः समुल्लसति, द्रवताञ्चोपैति चन्द्रकान्तोपलः, मुकुलायते च कमलं तत् केनानुरोधेन केन विरोधेनेति तावदवधारय, वस्तुस्वभावे च प्रयोजनं पर्येषयन् जनो महतामुपहास्य एव स्यात्।

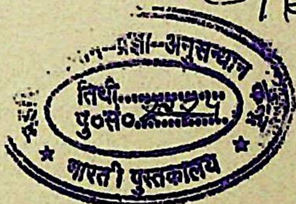
—मन्दारमञ्जरी

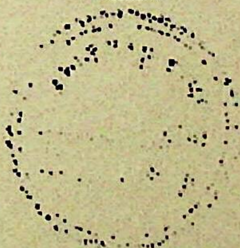
पीयूषमयूखे चन्द्रमा के उदयति एव उदय लेते ही जलनिधिः समुद्र समुल्लसति उल्लास से भर जाता है, चन्द्रकान्तोपलः चन्द्रकान्तमणि द्रवताम् द्रवता को उपैति प्राप्त हो जाता है, पिघल जाता है, च

तथा कमलं कमल मुकुलायते मुकुलित हो जाता है, बन्द हो जाता है तत् तो यह केन अनुरोधेन किस अनुरोधसे (और) केन विरोधेन किस विरोध से (ऐसा होता है) इति तावत् यह तो अवधारय विचारो। वस्तुस्वभावे प्रत्येक वस्तुके स्वभाव के विषय में प्रयोजनं उसका प्रयोजन पर्यैपयन् ढूँढता हुआ जनः मनुष्य महताम् बड़े लोगों के उपहास्यः एव उपहास का पात्र ही स्यात् होगा। अर्थात् प्रत्येक वस्तु के स्वभाव का कारण जानना कठिन है।






1485/6
अनुसन्धान
भारती पुस्तकालय



हमारे अग्रिम प्र

(जिनसे संस्कृत प्रचार में अभूतपूर्व स

१—बाल निबन्ध माला

२—संस्कृतनिबन्धादर्श (द्वितीय संस्

३—ललित संस्कृत पद्य संग्रह

४—ललित-मंगलम्

५—शिविर विनोद (संस्कृत में कैम्प फायर)

६—भोजराज्ये संस्कृत प्रचारः (एक एकाङ्की नाटक)

७—संस्कृत गान माला (द्वितीय भाग)

८—संस्कृत साहित्य के कुछ मञ्जुल प्रसंग

९—संस्कृत कवियों की मनोरञ्जक उक्तियाँ

१०—बाल वार्तालापः

११—सरल संस्कृत कथा संग्रह

१२—बाल धर्म शिक्षा

१३—बाल कथा माला

कार्यालय द्वारा प्रकाशित अन्य संस्कृत प्रचारोपयोगी संस्कृत पुस्तकों की सूची निम्नलिखित पते से मँगाइये—

व्यवस्थापक—

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

टेढ़ीनीम काशी ।

संं